गिरनार

2024

भाकृअनुप–मूँगफली अनुसंधान निदेशालय

(आई.एस.ओ 9001 : 2015 प्रमाणित संस्थान)

इवनगर रोड, जूनागढ 362 015, गुजरात, भारत

वार्षिक राजभाषा पत्रिका

गिरनार

अंक: 11

2024

भाकृअनुप-मूँगफली अनुसंधान निदेशालय, जूनागढ़

प्रकाशक:
डॉ. एस. के. बेरा
दूरभाष : +91285 2677201
+91285 2677202
ईमेल : director.dgr@icar.gov.in
वेबसाईट : www.dgr.org.in

संपादक:
दुर्गेश त्रिपाठी
आराधना चिलवाल
राजा राम चौधरी
शनमुका अदुपा
नंदिनी जी. ए.
एस के बेरा

मुद्रक: आर्ट इंडिया ऑफसेट, जुनागढ़–362001

विषय-सूची

	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ
1.	अग्नियास्त्र: जैविक खेती का प्रभावी कीट नियंत्रक	आराधना चिलवाल, हेतल देत्रोजा, उर्विश पटेल, किरण रेड्डी, और कणसागरा हार्दी	01
2.	कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता : संभावनाएँ और चुनौतियाँ	कणसागरा हार्दी, किरण रेड्डी, आराधना चिलवाल, हेतल देत्रोजा, राजा राम चौधरी और सी एस प्रहराज	03
3.	मूँगफली में प्रतिपोषक तत्वों की एक झलक	निलीमा करमाकर, नंदिनी जी ए, सुष्मिता सिंह, रुकम सिंह तोमर और संदीप कुमार बेरा	05
4.	कार्बन फार्मिंग: किसानों के लिए नयी आमदनी और पर्यावरण की सुरक्षा	हेतल देत्रोजा, किरण रेड्डी, कणसागरा हार्दी, आराधना चिलवाल, राजा राम चौधरी और सी एस प्रहराज	07
5.	जैव उर्वरक और रासायनिक उर्वरक : प्रभाव, लाभ और पर्यावरणीय दृष्टिकोण	कणसागरा हार्दी, हेतल देत्रोजा, किरण रेड्डी, आराधना चिलवाल और सी एस प्रहराज	09
6.	नारियल के मूल्य संवर्धित उत्पाद: पोषण और नवाचार	जयश्री लाखणोत्रा, उपासना भोपाला, आर्मी. आर. पटोलिया, ध्रुव चोचा और शन्मुका अडुपा	12
7.	किसान उत्पादक संगठनों के माध्यम से छोटे किसानों का सशक्तिकरण	किरण रेड्डी, कणसागरा हार्दी, आराधना चिलवाल, हेतल देत्रोजा, राजा राम चौधरी और सी एस प्रहराज	17
8.	अफ्लाटॉक्सिन संदूषण और मूँगफली मेंइसका प्रबंधन	नंदिनी जी ए, नीलिमा कर्माकर, सुष्मिता सिंह और पलापर्थी धर्मतेजा	19
9.	मूँगफली की खेती में लागत, लाभप्रदता और मूल्य प्राप्ति में व्यापक असमानता	मंजुनाथ पी. पालेड़ एवं उपासना डी. भोपाला	22
10.	शहद उत्पादन और मधुमक्खी पालन : टिकाऊ कृषि और पोषण का आधार	उपासना डी. भोपाला, जयश्री लाखणोत्रा, आर्मी. आर. पटोलिया और मंजुनाथ पी. पालेड	28
11.	माइक्रोग्रीन उत्पादन और व्यवसाय: स्वास्थ्य, पोषण और लाभ का अनोखा संगम	हेतल देत्रोजा, उर्विश पटेल, आराधना चिलवाल, किरण रेड्डी और कणसागरा हार्दी	34
12.	मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन: सतत कृषि उत्पादन की आधारशिला	आराधना चिलवाल, किरण रेड्डी, कणसागरा हार्दी, हेतल देत्रोजा, राजा राम चौधरी और सी एस प्रहराज	36
13.	खेती की फसलों में विषाणु तथा फाइटोप्लाज्मा से होने वाले रोग एवं उनका नियंत्रण	ऊर्जा भीमाणी, श्रेया आचार्य, नटराज एम.वी. और चिरागकुमार एम. भालिया	38
14.	प्रकृति का मिनिएचर – बोनसाई की कला और विज्ञान	आर्मी. आर. पटोलिया, उपासना भोपाला और जयश्री लखनोत्रा	41
15.	भारत में मूँगफली की खेती का बदलता स्वरूप	आर्मी. आर. पटोलिया, उपासना भोपाला, जयश्री लाखणोत्रा, मंजूनाथ पालेड और नटराज एम. वी.	44

डिस्क्लेमर: प्रस्तुत लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है। इसके लिए भाकृअनुप-मूँगफली अनुसंधान निदेशालय एवं प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है।

1. अग्नियास्त्र: जैविक खेती का प्रभावी कीट नियंत्रक

आराधना चिलवाल, हेतल देत्रोजा, उर्विश पटेल, किरण रेड्डी, कणसागरा हार्दी

अग्नियास्त्र क्या है?

- अग्नियास्त्र (Agniastra) और अज्ञास्त्र दोनों समान जैविक कीटनाशक उत्पाद हैं।
- यह एक पारंपरिक प्राकृतिक कीटनाशक है, जिसे ज़ीरो बजट नेचुरल फार्मिंग जैसी जैविक खेती प्रणालियों में रासायनिक कीटनाशकों की जगह उपयोग किया जाता है। जिसका उपयोग प्राचीन भारतीय कृषि पद्धतियों में किया जाता रहा है। यह पूरी तरह से प्राकृतिक और पर्यावरण के अनुकूल कीटनाशक है, जिसे गाय के गोमूत्र, नीम की पत्तियाँ, लहसुन, हरी मिर्च, अदरक और कभी-कभी तम्बाकू जैसे तत्वों से तैयार किया जाता है। अग्नियास्त्र का मुख्य उद्देश्य फसलों पर लगने वाले कीटों को नियंत्रित करना और पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाना होता है, जिससे फसलें स्वस्थ और रासायन मुक्त रहती हैं। यह मिश्रण इतना तीव्र प्रभाव वाला होता है कि यह कीटों के लिए "अग्नि" के समान कार्य करता है, इसीलिए इसे "अग्नियास्त्र" कहा जाता है। अग्नियास्त्र का छिड़काव फसलों पर सप्ताह में एक या दो बार किया जा सकता है, विशेषकर जब कीटों का प्रकोप अधिक हो। इसका उपयोग सब्ज़ियों, दालों, फलों और अन्य फसलों पर किया जा सकता है। यह न केवल कीटनाशकों पर खर्च कम करता है, बल्कि मिट्टी और पर्यावरण को भी सुरक्षित रखता है, साथ ही जैविक खेती को बढ़ावा देता है। अग्नियास्त्र तैयार करना आसान है और इसे छोटे स्तर के किसान भी घर पर बना सकते हैं, जिससे यह कम लागत वाला और प्रभावी विकल्प बन जाता है। मुख्य रूप से यह चबाने वाले और चूसने वाले कीटों के नियंत्रण में कारगर है|

सामग्री (एक बैच के लिए)

- **गोमूत्र** – 10-20 लीटर (स्थानीय देशी गाय का)
- **नीम के पत्ते** – 2-5 किग्रा (पेस्ट या कद्दूकस)
- **तंबाकू** – 500 ग्राम-1 किग्रा (पाउडर/पत्तियाँ)
- **हरी मिर्च** – 500 ग्राम (पेस्ट)
- **लहसुन** – 250-500 ग्राम (पेस्ट)
- **(वैकल्पिक)** हल्दी पाउडर – 200 ग्राम

तैयारी की विस्तृत प्रक्रिया

1. खनिज तैयार करें

नीम, तंबाकू, मिर्च, लहसुन आदि को अच्छी तरह धोकर महीन पेस्ट/पल्प तैयार कर लें।

2. मिश्रण तैयार करें

- एक मटके या बड़े बर्तन में गोमूत्र डालें।
- उसमें क्रमशः तंबाकू, मिर्च, लहसुन पेस्ट व नीम पेस्ट डालें और अच्छी तरह मिलाएं।

3. उबालना (4-5 बार)

- इस मिश्रण को धीमी आँच पर 4-5 बार उबालें। प्रत्येक उबाल के बाद 10-15 मिनट तक ठंडा होने दें फिर फिर से उबालें।
- कुछ वैज्ञानिक रिपोर्टों अनुसार झाग बनने के द्वितीय चरण पर ऑल्केलॉइड एवं सक्रिय घटक घोल में अच्छे से निकल जाते हैं।

4. ठंडा करना और खमीर बनाना

- जब अंतिम उबाल हो जाए, तब बर्तन को 48 घंटे तक छायादार स्थान पर ढककर रखें ताकि किण्वन पूरी तरह हो सके।
- इस दौरान सुबह-साँझ 1 मिनट के लिए लकड़ी या ठोस छड़ी से घड़ी की दिशा में घूमा कर मिलाएँ, इससे एक्टिव तत्व अच्छी तरह मिश्रित होते हैं।

5. छानना

- 48 घंटे बीत जाने पर मुसलिन या कपड़े से अच्छी तरह छानें ताकि पेस्ट और ठोस अंश बाहर निकल जाएँ।

भंडारण और स्थायित्व

- चलते-फिज़ की संभावना: खुलते समय 30 मिनट प्रतीक्षा करें, झाग फैल सकता है।

  स्टोरिंग: एयर-टाइट मटके या ड्रम में,

  शीत, अंधा स्थान, 3–6 माह तक उपयोग योग्य।

उपयोग विधि

- **दूषित अनुपात :**खेत/एकड़ के लिए: 6-8 लीटर Agniastra + 200 लीटर पानी
- **छोटे पौधों/बगीचे के लिए:** 1 लीटर + 50 लीटर पानी। या 300 मि.ली.-1 लीटर केंद्रित घोल+10-100 लीटर पानी (कीट प्रभावितता पर निर्भर)।
- **छिड़काव समय:** सुबह या शाम (4-6 PM) ताकि तेज़ धूप से बचा जा सके।
- **बारंबारता:** शुरूआत में हर 4 दिन एक बार, फिर कीट दबाव कम होने पर 7-15 दिन का अंतर

सावधानियाँ:

घोल खुलने पर फिज़ (बुलबुला) आ सकता है धीरे खोलें, कम से कम 30 मिनट प्रतीक्षा करें। त्वचा/आंखों को बचाने के लिए दस्ताने, मुखौटा पहनें। पहले छोटे क्षेत्र में टेस्ट करें। घोल को ठंडी, अंधेरे जगह में रखें, 3-6 महीने तक प्रयोग हो सकता है।

वैज्ञानिक उपादेयता और लाभ

- प्राकृतिक, रासायनिक-मुक्त, पर्यावरण के लिए सुरक्षित। पर्यावरण हितैषी, मिट्टी एवं पक्षी-जीवों (मधुमक्खी, प्रजीवी ततैया) के लिए सुरक्षित है।
- कीटों का विकास रुकता है और फसल उत्पादन में वृद्धि साबित हुई, चूसने और चबाने वाले कीटों पर असरदार: सफ़ेद मक्खी, लकड़बग्गा, लीफ रोलर, बेर फली कीड़े आदि।
- 90% युवा कीट मृत्यु दर रिपोर्ट की गई है, अल्कालॉइड तत्व (नीकोटिन, एलिसिन, कैप्साइसिन, अजादिराक्टिन) कीटों को निष्क्रिय करने व उनके विकास को रोकने में सक्षम है।

निष्कर्ष :

अग्नियास्त्र एक बहुपयोगी, सुलभ, और प्रभावी जैविक कीटनाशक है जो आधुनिक रासायनिक कृषि की समस्याओं का प्राकृतिक समाधान प्रस्तुत करता है। यह मंगलनीय प्रभावशाली, लागत-कम, और पर्यावरण-सुरक्षित है। यह एक ऐसा साधन है जिससे किसान कम लागत में सुरक्षित और जैविक उत्पाद प्राप्त कर सकता है, और साथ ही भूमि, जल व वायु को प्रदूषण से बचा सकता है। यदि प्रत्येक किसान इसे अपनी खेती में अपनाता है, तो यह देश को प्राकृतिक खेती की ओर अग्रसर कर सकता है

Preparation of **Agniastra**

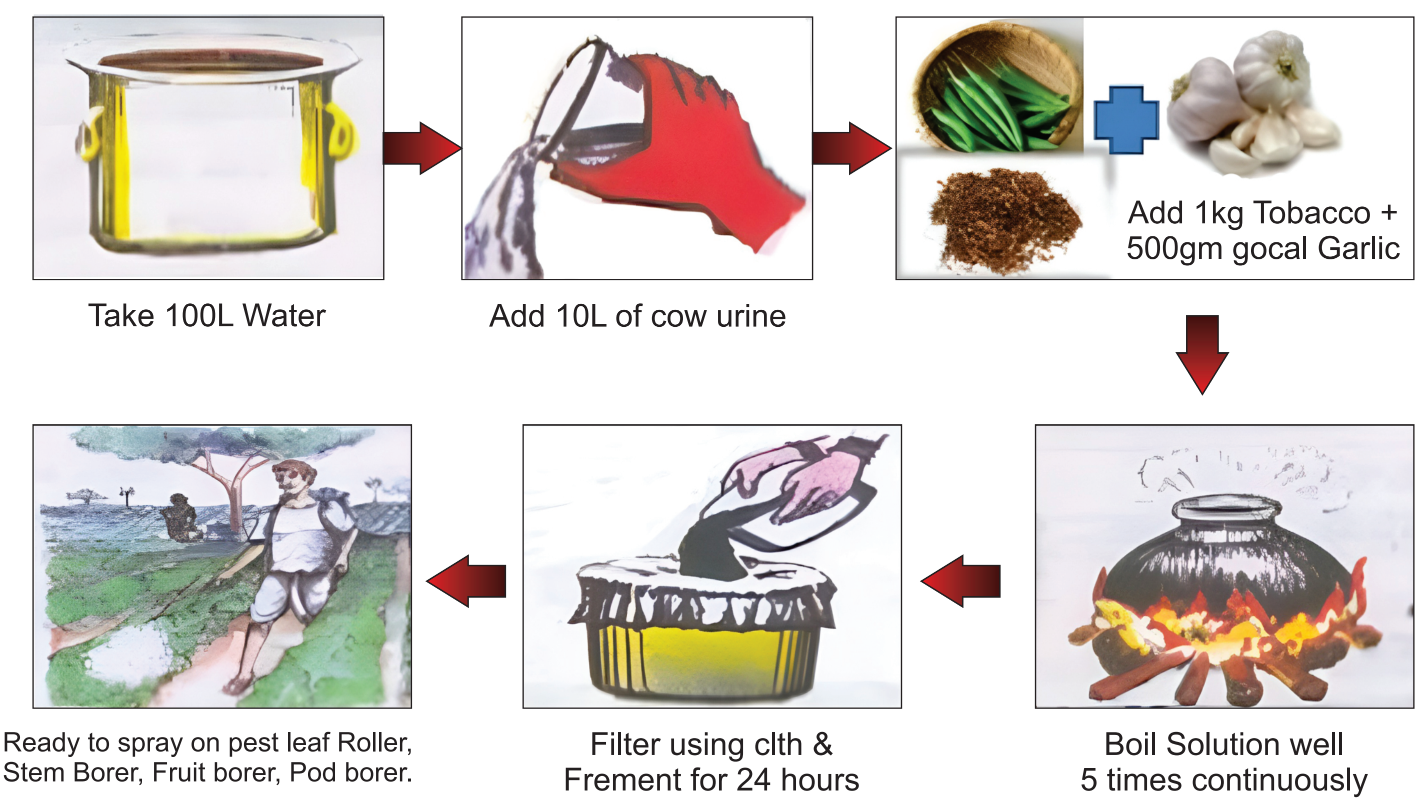

2. कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता: संभावनाएँ और चुनौतियाँ

कणसागरा हार्दी, किरण रेड्डी, आराधना चिलवाल, हेतल देत्रोजा, राजा राम चौधरी, सी एस प्रहराज

परिचय

कृषि, जो कई देशों की रीढ़ है और दुनिया की एक बड़ी आबादी की आजीविका का मुख्य स्रोत है, आज एक बड़े बदलाव से गुजर रही है। इस परिवर्तन का प्रमुख कारण है आधुनिक तकनीकों, विशेष रूप से कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का समावेश। फसलों की बीमारियाँ पहचानने से लेकर सिंचाई की समय-सारणी को अनुकूलित करने तक, AI खेती के हर पहलू को बदल रहा है। जलवायु परिवर्तन, सीमित संसाधन और बढ़ती जनसंख्या के दौर में कृषि में AI का उपयोग कोई विलासिता नहीं, बल्कि एक आवश्यकता बन गई है।

कृषि में कृत्रिम बुद्धिमत्ता क्या है?

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का अर्थ है ऐसे मशीनों का विकास जो इंसानों की तरह सोचने, सीखने और निर्णय लेने में सक्षम हों। कृषि में, AI उपग्रहों, सेंसर, मौसम रिपोर्टों, ड्रोन और कृषि यंत्रों से प्राप्त डेटा का विश्लेषण कर किसानों को सूचित और सटीक निर्णय लेने में सहायता करता है। इसमें मशीन लर्निंग (ML) का भी उपयोग होता है, जो बड़ी मात्रा में कृषि डेटा का विश्लेषण कर भविष्यवाणियाँ करता है।

कृषि में AI के प्रमुख उपयोग

1. सटीक खेती

AI सेंसर, उपग्रह चित्र और मौसम की जानकारी के माध्यम से यह तय करने में मदद करता है कि किस क्षेत्र में कितनी मात्रा में पानी, उर्वरक या कीटनाशक की आवश्यकता है। इससे उत्पादकता बढ़ती है और संसाधनों की बर्बादी घटती है।

2. फसल और मिट्टी की निगरानी

ड्रोन और AI-सक्षम सेंसर फसलों की सेहत, मिट्टी की नमी और पोषक तत्वों की कमी की पहचान करते हैं, जिससे समय पर उपाय किए जा सकते हैं।

3. पूर्वानुमान विश्लेषण

AI मॉडल मौसम, बाजार रुझान और उपज का पूर्वानुमान कर सकते हैं। इससे किसान बेहतर ढंग से योजना बना सकते हैं।

4. स्वचालित सिंचाई प्रणाली

AI आधारित सिंचाई कंट्रोलर मिट्टी की नमी के अनुसार पानी की मात्रा को स्वचालित रूप से नियंत्रित करते हैं, जिससे जल की बचत होती है।

5. रोग और कीट की पहचान

AI छवि विश्लेषण के ज़रिए पत्तियों की तस्वीरों से रोग और कीट की पहचान कर सकता है। इससे समय पर उपचार संभव होता है।

6. कृषि रोबोटिक्स

AI युक्त रोबोट बुवाई, निराई और कटाई जैसे कार्यों में मदद कर रहे हैं, जिससे कार्य दक्षता और गति में वृद्धि होती है।

AI के लाभ

- **उत्पादकता में वृद्धि:** सटीक निर्णय और प्रबंधन से फसल की उपज बढ़ती है।
- **लागत में कमी:** स्वचालित तकनीकों से श्रम और रासायनिक लागत में कटौती होती है।
- **पर्यावरणीय स्थिरता:** AI संसाधनों की बचत कर पर्यावरणीय प्रभाव को घटाता है।
- **रियल-टाइम निर्णय:** तत्काल डेटा विश्लेषण से समय पर निर्णय लिए जा सकते हैं।
- **डेटा पर आधारित कृषि:** बड़े डेटा सेट का विश्लेषण करके किसान बेहतर निर्णय ले सकते हैं।

AI को अपनाने की चुनौतियाँ

AI की संभावनाओं के बावजूद, इसके उपयोग में कई बाधाएँ भी हैं:

- **उच्च प्रारंभिक लागत:** सेंसर, ड्रोन और AI सॉफ्टवेयर महंगे होते हैं, जिससे छोटे किसानों के लिए यह कठिन हो जाता है।
- **जागरूकता और प्रशिक्षण की कमी:** ग्रामीण क्षेत्रों में AI के प्रति जागरूकता कम है और तकनीकी ज्ञान की भी कमी है।
- **डेटा गोपनीयता:** कृषि डेटा के संग्रह और उपयोग को लेकर गोपनीयता संबंधी चिंताएँ हैं।
- **इंटरनेट कनेक्टिविटी की कमी:** कई ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट की सीमित पहुँच AI सेवाओं की उपयोगिता को सीमित करती है।
- **स्थानीय अनुकूलन:** AI मॉडल को स्थानीय भाषा, फसलों और जलवायु के अनुसार ढालना आवश्यक है।

भारत में AI आधारित कृषि की प्रगति

भारत जैसे विविध कृषि जलवायु वाले देश में AI की संभावनाएँ बहुत अधिक हैं। सरकार की डिजिटल इंडिया, स्मार्ट एग्रीकल्चर जैसी पहलें और माइक्रोसॉफ्ट जैसे कंपनियों की साझेदारी (जैसे आंध्र प्रदेश में AI sowing app) अच्छे परिणाम दिखा रही हैं।

भविष्य की संभावनाएँ

भविष्य में स्मार्ट और टिकाऊ खेती का रास्ता AI से होकर ही जाता है। जैसे-जैसे IoT, बिग डेटा, मशीन लर्निंग और ब्लॉकचेन तकनीकें आगे बढ़ेंगी, कृषि और अधिक स्वचालित, बुद्धिमान और संसाधन-कुशल हो जाएगी। स्टार्टअप्स और एग्रीटेक कंपनियाँ किसानों के लिए किफायती और सरल AI समाधान विकसित कर रही हैं। सरकार की नीति, डिजिटल शिक्षा और ग्रामीण इंटरनेट से जुड़ाव इस दिशा में सहायक होंगे।

निष्कर्ष

कृषि क्षेत्र में AI एक क्रांतिकारी बदलाव ला सकता है, जिससे कृषि अधिक उत्पादक, पर्यावरण के अनुकूल और टिकाऊ बन सकेगी। हालांकि, इसके लिए सभी हितधारकों-सरकार, वैज्ञानिक, निजी क्षेत्र और किसानों-के संयुक्त प्रयासों की आवश्यकता है। यदि सही ढंग से अपनाया जाए, तो AI कृषि क्षेत्र में एक गेम चेंजर सिद्ध हो सकता है और आने वाली पीढ़ियों के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित कर सकता है।

3. मूँगफली में प्रतिपोषक तत्वों की एक झलक

निलीमा करमाकर, नंदिनी जी ए, सुष्मिता सिंह, रुकम सिंह तोमर, संदीप कुमार बेरा

भा.कृ.अनु.प.- भारतीय मूँगफली अनुसंधान संस्थान

परिचय:

मूँगफली (Arachis hypogaea) एक दलहन है जिसकी उत्पत्ति दक्षिण अमेरिका में हुई थी। इसे कई नामों से जाना जाता है, जैसे कि गूबर, अर्थनट और ग्राउंडनट। इसमें खनिज, विटामिन और जैव सक्रिय यौगिकों की प्रचुरता होती है। साथ ही, इसमें तेल, वसा, रेशा और प्रोटीन भी उच्च मात्रा में पाए जाते हैं, जो मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी रूपों में उपस्थित होते हैं। यह इसे आहार विविधता के लिए एक बेहतरीन स्रोत बनाता है। 100 ग्राम मूँगफली ज़िंक (Zn) के अनुशंसित दैनिक सेवन (RDA) का 30% और आयरन (Fe) का 57% प्रदान कर सकती है, जो अनाजों की तुलना में कहीं अधिक है। अतः अनाज के साथ मूँगफली के सेवन से मानव की पोषण स्थिति में सुधार लाया जा सकता है और यह बाजार में कई प्रकार के उत्पादों के रूप में आसानी से उपलब्ध है।

मूँगफली दुनिया भर में पारंपरिक व्यंजनों में विभिन्न रूपों में खाई जाती है। इससे तैयार उत्पादों में भुनी मूँगफली, पीनट बटर, मूँगफली का तेल, मूँगफली का पेस्ट, मूँगफली की चटनी, मूँगफली का आटा, मूँगफली का दूध, मूँगफली पेय, मूँगफली स्नैक्स (नमकीन या मीठे बार्स) और मूँगफली चीज़ जैसे उत्पाद शामिल हैं। कच्ची मूँगफली भी खाई जाती है। भुनी मूँगफली को 180°C पर लगभग 12–15 मिनट या 160°C पर 40–60 मिनट (नमी की मात्रा के अनुसार) तक गर्म करके तैयार किया जाता है।

प्रतिपोषक तत्व और इनके दुष्प्रभाव:

हालाँकि मूँगफली संतुलित पोषण का एक महत्वपूर्ण स्रोत है, फिर भी इसमें कुछ प्रतिपोषक तत्व (Antinutrients) भी पाए जाते हैं, इनसे होने वाली स्वास्थ्य समस्याओं पर विचार करना आवश्यक है।

अफ्लाटॉक्सिन विषाक्तता:

Aspergillus flavus नामक एक प्रकार का कवक मूँगफली को संक्रमित कर सकता है और अफ्लाटॉक्सिन नामक विषैला पदार्थ उत्पन्न करता है। इसके लक्षणों में भूख कम लगना और आँखों का पीला पड़ना (पीलिया) शामिल हैं, जो कि यकृत (लीवर) की समस्याओं के संकेत हैं। गंभीर मामलों में यकृत विफलता या यकृत कैंसर भी हो सकता है।

मूँगफली को किस प्रकार संग्रहित किया जाता है, यह अफ्लाटॉक्सिन के विकास की संभावना को प्रभावित करता है। विशेष रूप से उष्ण और आर्द्र जलवायु (जैसे कि उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों) में जोखिम अधिक होता है। इससे बचने के लिए मूँगफली को कटाई के बाद अच्छी तरह सुखाकर कम तापमान और नमी में संग्रहित करना चाहिए।

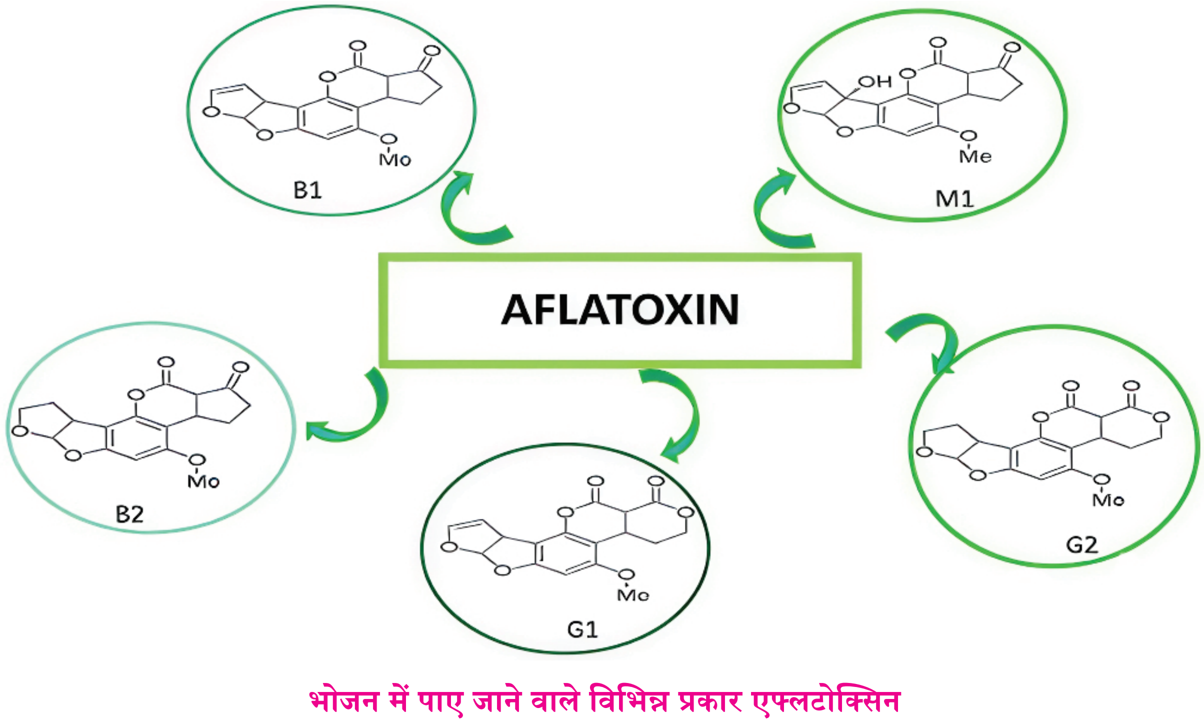

भोजन में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार एफ्लटोक्सिन

फाइटेट:

मूँगफली में कई प्रकार के प्रतिपोषक यौगिक होते हैं जो पोषक तत्वों के अवशोषण में बाधा डालते हैं और इसकी पौष्टिकता को कम करते हैं। इनमें फाइटिक एसिड (फाइटेट) प्रमुख है। यह सभी बीजों, अनाजों, नट्स और दलहनों में पाया जाता है। मूँगफली में इसकी मात्रा 0.2% से 4.5% तक हो सकती है।

फाइटिक एसिड मूँगफली में मौजूद आयरन और ज़िंक की उपलब्धता को कम करता है। यह उन लोगों के लिए सामान्यतः चिंता का विषय नहीं है, जो नियमित रूप से मांस का सेवन करते हैं और संतुलित आहार लेते हैं। लेकिन विकासशील देशों में, जहाँ अनाज और दलहन ही मुख्य भोजन स्रोत होते हैं, वहाँ यह एक महत्वपूर्ण समस्या बन सकती है।

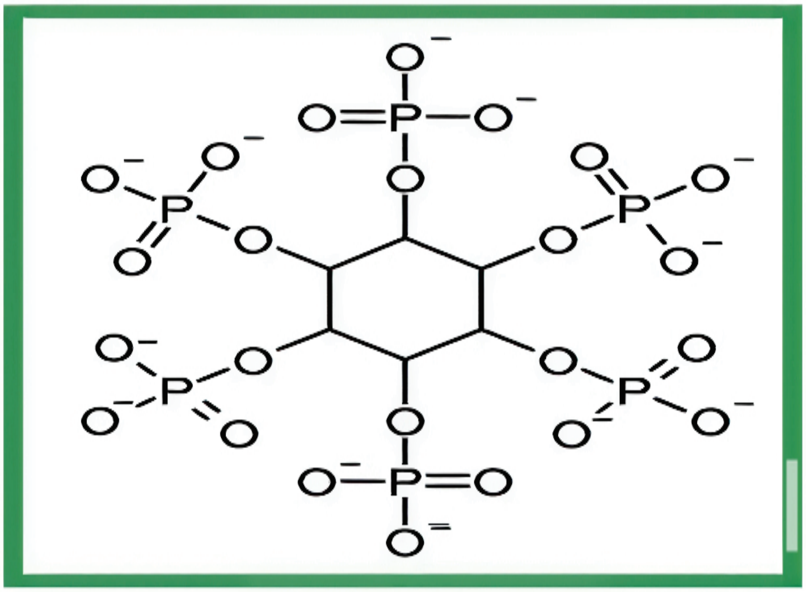

फाइटीक एसिड की संरचना

ऑक्सालेट की मात्रा:

मूँगफली में ऑक्सालेट की मात्रा अधिक होती है (187.0 मिलीग्राम/100 ग्राम भुनी मूँगफली)। इससे ऑक्सालेट नेफ्रोपैथी (गुर्दों की बीमारी) का खतरा हो सकता है। चूंकि मूँगफली एक आम और नियमित रूप से खाया जाने वाला खाद्य पदार्थ है, अतः यह विशेष रूप से चिंता का विषय है। ऑक्सालेट क्रिस्टल जब गुर्दे में जमा हो जाते हैं, तो यह सूजन और कोशिका क्षति का कारण बनते हैं, जिससे तीव्र ऑक्सालेट नेफ्रोपैथी हो सकती है और यह स्थिति पुरानी हो जाने पर गुर्दे की बीमारी का रूप ले सकती है। एक अध्ययन के अनुसार, मूँगफली बटर में प्रति 100 ग्राम 168.7 मिलीग्राम पेट में घुलनशील ऑक्सालेट और 139.4 मिलीग्राम आंतों में घुलनशील ऑक्सालेट पाए गए। कई खाद्य पदार्थों में ऑक्सालेट पाए जाते हैं, जो उन लोगों के लिए हानिकारक हो सकते हैं जिन्हें पहले से गुर्दे की पथरी का खतरा हो।

मूँगफली से एलर्जी:

मूँगफली सबसे सामान्य खाद्य एलर्जियों में से एक है। यह ध्यान देने योग्य है कि मूँगफली असल में नट्स नहीं बल्कि दलहनों की श्रेणी में आती है, इसलिए यह ट्री नट एलर्जी से अलग है। इसके लक्षणों में खुजली, पित्ती, सूजन, एक्ज़िमा, छींकना, अस्थमा अटैक, पेट दर्द, ब्लड प्रेशर का गिरना, दस्त, और हृदयगति रुक जाना शामिल हो सकते हैं। मूँगफली से होने वाली एलर्जी को सबसे गंभीर एलर्जी में से एक माना जाता है। ऐसे लोग जिन्हें यह एलर्जी है, उन्हें मूँगफली और उससे बने सभी उत्पादों से पूरी तरह बचना चाहिए।

निष्कर्ष:

मूँगफली जितनी लोकप्रिय है, उतनी ही पौष्टिक भी है। यह विटामिन, खनिज और पौधों से प्राप्त प्रोटीन का बेहतरीन स्रोत है। कुछ पूर्व-उपचार विधियों जैसे नमक वाले पानी में भिगोना या सामान्य पानी में भिगोना, मूँगफली में पाए जाने वाले ऑक्सालेट की मात्रा को कम कर सकते हैं। इसी तरह, भिगोने से टैनिन की मात्रा में भी कमी आती है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्रसंस्करण विधियों का प्रतिपोषक तत्वों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त, जब मूँगफली को 50°C से 70°C तक सुखाया गया, तो ऑक्सालेट की मात्रा में उल्लेखनीय कमी पाई गई, जो दर्शाता है कि गर्मी से प्रतिपोषक तत्वों में कमी लाई जा सकती है। इस प्रकार, उपयुक्त प्रसंस्करण विधियों द्वारा मूँगफली की पौष्टिकता को और बढ़ाया जा सकता है।

4. कार्बन फार्मिंग: किसानों के लिए नयी आमदनी और पर्यावरण की सुरक्षा

हेतल देत्रोजा, किरण रेड्डी, कणसागरा हार्दी, आराधना चिलवाल, राजा राम चौधरी, सी एस प्रहराज
भाकृअनुप - भारतीय मूँगफली अनुसंधान संस्थान

आज की खेती सिर्फ अनाज, कपास या मूँगफली उगाने तक सीमित नहीं रही है। बढ़ते जलवायु परिवर्तन, मिट्टी की गिरती सेहत और रासायनिक लागत ने अब खेती को एक नई दिशा की ओर मोड़ दिया है। आज सवाल सिर्फ उपज का नहीं है — बल्कि इस बात का भी है कि क्या किसान पर्यावरण की रक्षा करते हुए अतिरिक्त आमदनी कमा सकता है? इसका उत्तर है: हां, और इसका रास्ता है कार्बन फार्मिंग।

कार्बन फार्मिंग क्या है?

कार्बन फार्मिंग एक ऐसी कृषि प्रणाली है जिसमें किसान ऐसे उपाय अपनाता है जो वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) को खींचकर मिट्टी में सुरक्षित रूप से जमा करते हैं। इसके बदले में किसानों को "कार्बन क्रेडिट" मिलता है, जिसे कंपनियां खरीद सकती हैं। ये कंपनियां अपने कार्बन उत्सर्जन की भरपाई के लिए ऐसे क्रेडिट खरीदती हैं, जिससे पर्यावरणीय संतुलन बना रहता है।

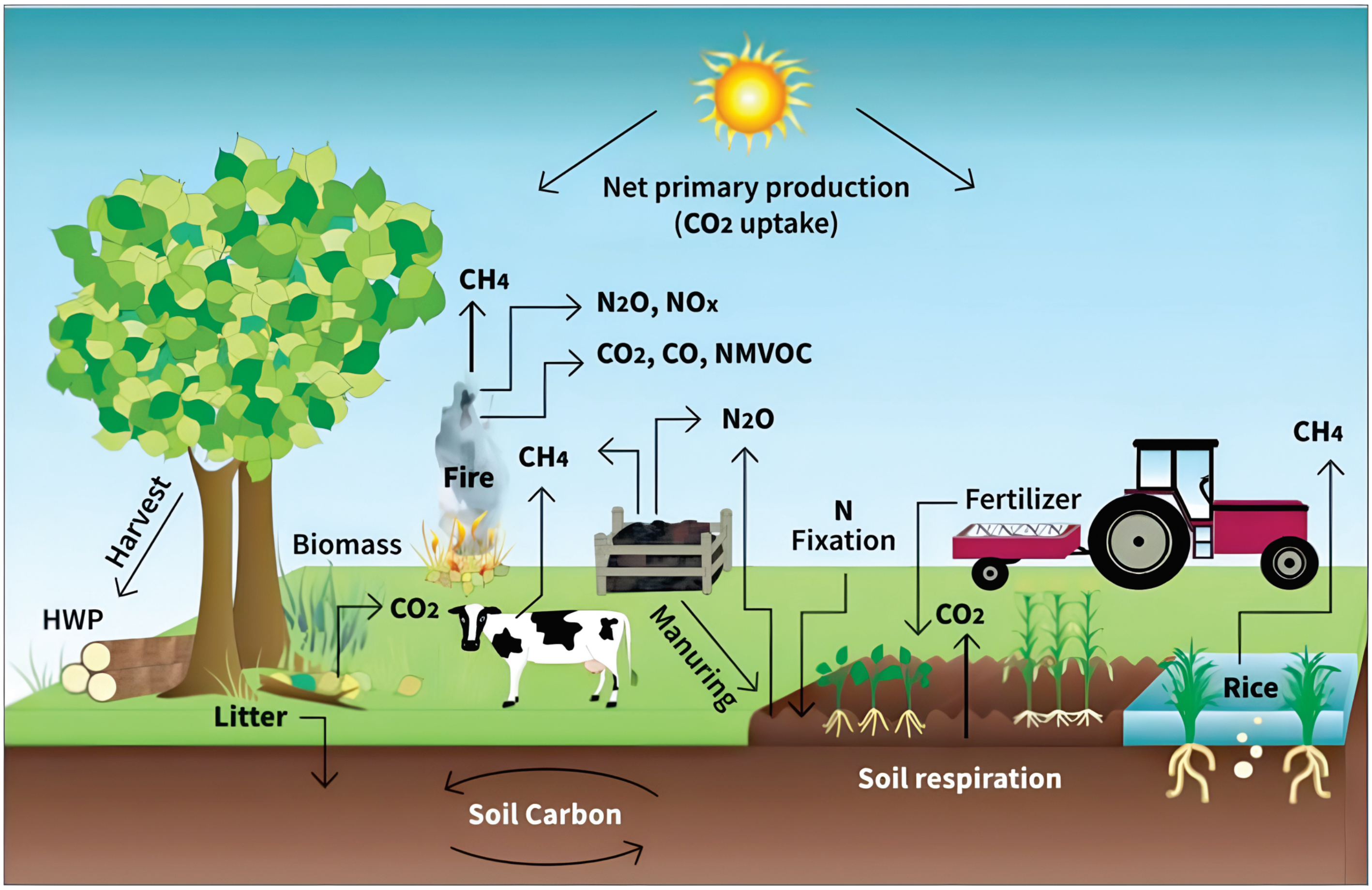

कार्बन फार्मिंग के प्रमुख तरीके:

- **नो-टिल या न्यूनतम जुताई :** बार-बार जुताई से मिट्टी का कार्बन हवा में चला जाता है। नो-टिल से मिट्टी की संरचना बची रहती है।
- **कवर क्रॉप्स:** फसल कटने के बाद खेत को खाली न छोड़कर उस पर हरित खाद वाली फसलें (जैसे सनई, मूंग, उड़द) बोई जाती हैं जो कार्बन को अवशोषित करती हैं।
- **जैविक खाद और कम्पोस्ट:** खेत में गोबर, फसल अवशेष, जीवामृत जैसी जैविक खादों के उपयोग से मिट्टी में कार्बन की मात्रा बढ़ती है।
- **अग्रोफोरेस्ट्री (Agroforestry):** पेड़ और फसल को एक साथ लगाना। पेड़ वातावरण से CO_2 को अधिक मात्रा में खींचते हैं।
- **पशु अपशिष्ट का प्रबंधन:** गोबर गैस संयंत्र और कम्पोस्टिंग से ग्रीनहाउस गैसों में कमी लाई जा सकती है।

किसानों को क्या फायदा?

- **अतिरिक्त आमदनी:** कार्बन क्रेडिट बेचकर किसान हर वर्ष ₹2000 से ₹10000 तक कमा सकते हैं।
- **मिट्टी की उर्वरता में सुधार:** जैविक कार्बन मिट्टी की जलधारण क्षमता और जीवाणु गतिविधि को बढ़ाता है।
- **कम इनपुट लागत:** जैविक तरीकों से रासायनिक खाद व कीटनाशकों की आवश्यकता कम हो जाती है।
- **जलवायु परिवर्तन से सुरक्षा:** कार्बन फार्मिंग खेत को सूखा, गर्मी और असमय वर्षा से लड़ने में सक्षम बनाती है।
- **प्राकृतिक खेती की ओर कदम:** पर्यावरण के प्रति जागरूक खेती को बढ़ावा मिलता है।

भारत में स्थिति और गुजरात की भूमिका:

भारत में कुछ राज्यों में कार्बन फार्मिंग के पायलट प्रोजेक्ट शुरू हो चुके हैं:

- मध्य प्रदेश में रेगेनरेटिव एग्रीकल्चर के माध्यम से किसान कार्बन क्रेडिट से जुड़ रहे हैं।
- महाराष्ट्र में AgriCarbon Initiatives के तहत किसानों को तकनीकी और प्रमाणन सहायता मिल रही है।
- गुजरात के कच्छ, राजकोट और जूनागढ़ जिलों में जलवायु-अनुकूल खेती को बढ़ावा देने के प्रयास चल रहे हैं।

गुजरात में जहां जल संकट और मिट्टी की गिरती गुणवत्ता चिंता का विषय है, वहां कार्बन फार्मिंग न केवल पर्यावरण सुधार का माध्यम है, बल्कि किसानों के लिए नई आय का जरिया भी बन सकता है।

चुनौतियाँ और समाधान

चुनौती	समाधान
जानकारी की कमी	किसानों को प्रशिक्षण देना, खेत प्रदर्शन (डेमो प्लॉट)
प्रमाणन की जटिलता	सरल प्रक्रिया, मोबाइल ऐप्स से निगरानी
लागत और बाजार की पहुंच	एफपीओ के माध्यम से सामूहिक प्रमाणन और विपणन
छोटे किसानों की भागीदारी	समूहों के माध्यम से सहभागी मॉडल

एफपीओ की भूमिका

FPO (किसान उत्पादक संगठन) इस पूरे मॉडल को ज़मीनी स्तर पर सफल बना सकते हैं:

- किसानों को कार्बन फार्मिंग की जानकारी देना
- डेटा रिकॉर्डिंग और प्रमाणन में सहायता
- बाज़ार से जुड़ाव बनाना
- नीति निर्माताओं के साथ संवाद

निष्कर्ष

कार्बन फार्मिंग एक ऐसा अवसर है जो भारतीय किसान को सिर्फ फसल का उत्पादक नहीं, बल्कि जलवायु योद्धा (Climate Warrior) बना सकता है। जब दुनिया कार्बन उत्सर्जन घटाने की राह खोज रही है, तब हमारे किसान मिट्टी के जरिए समाधान दे सकते हैं और साथ में कमा भी सकते हैं।

आने वाला समय उस किसान का है जो अनाज के साथ-साथ हवा को भी शुद्ध करता है। गुजरात की धरती से यह क्रांति शुरू हो सकती है — और गिरनार की कलम से यह संदेश दूर तक जा सकता है।

5. जैव उर्वरक और रासायनिक उर्वरक: प्रभाव, लाभ और पर्यावरणीय दृष्टिकोण

कणसागरा हार्दी, हेतल देत्रोजा, किरण रेड्डी, आराधना चिलवाल, सी एस प्रहराज
भाकृअनुप-मूँगफली अनुसंधान निदेशालय, जूनागढ़-362 001

वर्तमान युग में जब भारत और विश्व भर में कृषि की स्थायित्वशीलता और पर्यावरणीय संतुलन एक गहन चिंता का विषय है, तब उर्वरकों की भूमिका को पुनः मूल्यांकन करने की आवश्यकता है। एक ओर जहाँ पारंपरिक रासायनिक उर्वरकों ने कृषि उत्पादन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, वहीं दूसरी ओर इनके अधिक प्रयोग से मिट्टी की उर्वरता, जल स्रोतों की गुणवत्ता और मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इसके विपरीत, जैव उर्वरक एक पर्यावरण-सम्मत विकल्प के रूप में उभर रहे हैं, जो दीर्घकालिक लाभ प्रदान करते हैं। इस लेख में हम दोनों उर्वरकों का वैज्ञानिक, पर्यावरणीय, सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण से गहन विश्लेषण करेंगे।

जैव उर्वरक: प्रकृति का जैविक उपहार

जैव उर्वरक ऐसे जीवित सूक्ष्मजीव होते हैं जो पौधों की वृद्धि में सहायक होते हैं। ये सीधे पोषक तत्व प्रदान नहीं करते, बल्कि ऐसे जैव-रासायनिक चक्रों को सक्रिय करते हैं जिससे पौधों को आवश्यक पोषक तत्व प्राकृतिक रूप से उपलब्ध होते हैं। जैव उर्वरक मिट्टी में मौज़ूद जीवों की विविधता को बढ़ाते हैं, जिससे मृदा की संरचना, जलधारण क्षमता और उर्वरता दीर्घकालिक रूप से बनी रहती है।

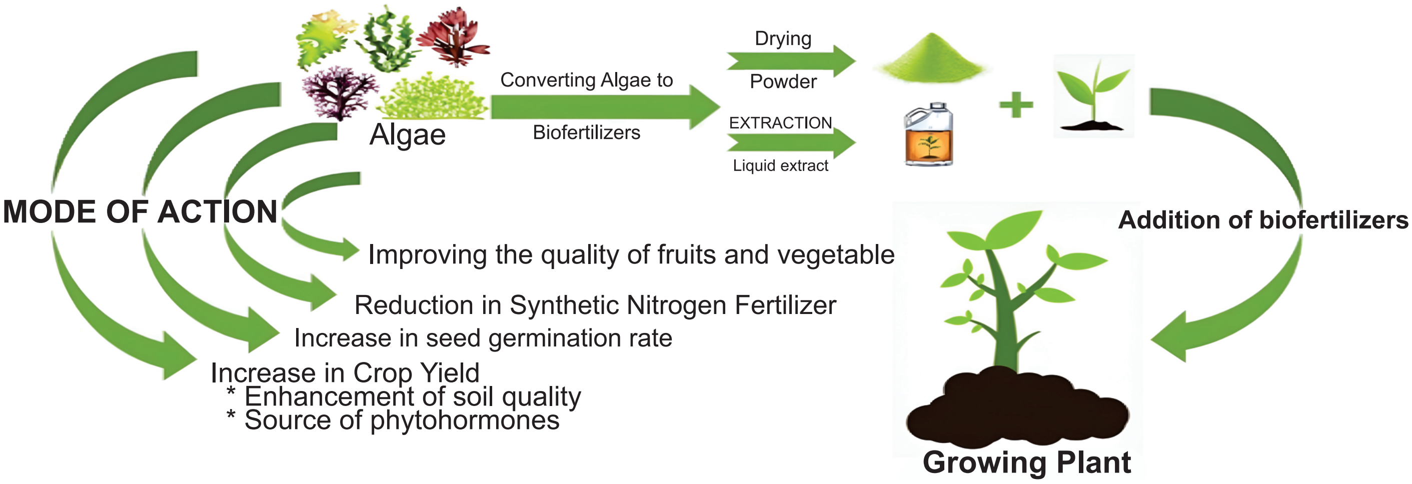

मुख्य प्रकार और उनकी भूमिका :

जैव उर्वरक का प्रकार	कार्य	उपयुक्त फसलें
राइजोबियम	फलियों की जड़ों में गांठ बनाकर नाइट्रोजन स्थिरीकरण	चना, अरहर, मूंग
एजोटोबैक्टर	गैर-फलियों वाली फसलों के लिए मुक्त नाइट्रोजन स्थिरीकरण	गेहूं, मक्का
पीएसबी (PSB)	फॉस्फेट को घुलनशील बनाना	सभी फसलें
बीजीए (BGA)	जल में नाइट्रोजन स्थिरीकरण	धान
मायकोराइजा	जड़ों की सतह बढ़ाकर पोषक तत्वों का अवशोषण	सब्जियाँ, फलवाली फसलें

पर्यावरण पर प्रभाव:

जैव उर्वरकों का प्रयोग पर्यावरण के लिए अत्यंत हितकारी है। ये कार्बन फुटप्रिंट नहीं बढ़ाते, जल स्रोतों को प्रदूषित नहीं करते और हरितगृह गैसों के उत्सर्जन को रोकते हैं। साथ ही, जैव उर्वरकों से मिट्टी में प्राकृतिक सूक्ष्मजीवों की संख्या बनी रहती है जिससे मृदा जैविक रूप से सक्रिय रहती है।

आर्थिक लाभ:

जैव उर्वरक आमतौर पर रासायनिक उर्वरकों की तुलना में काफी सस्ते होते हैं। सरकारें जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए इन पर सब्सिडी और प्रशिक्षण कार्यक्रम भी चलाती हैं। किसानों को दीर्घकालिक लाभ मिलता है क्योंकि मिट्टी की उर्वरता संरक्षित रहती है और उत्पादन में स्थिरता आती है।

जैव उर्वरकों के उपयोग से रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता घटती है, जिससे किसानों की लागत में 30–40% तक की कमी आती है। ये मिट्टी की उर्वरता को लंबे समय तक बनाए रखते हैं, जिससे उत्पादन स्थिर रहता है। सामाजिक रूप से यह किसानों को आत्मनिर्भर बनाता है, स्वास्थ्य जोखिम घटाता है और पर्यावरण के प्रति जागरूकता बढ़ाता है।

चुनौतियाँ और समाधान:

जैव उर्वरकों की गुणवत्ता में असंगति, जागरूकता की कमी, भंडारण समस्याएँ और धीमा प्रभाव, ये प्रमुख बाधाएँ हैं। समाधान के रूप में किसानों को प्रशिक्षण देना, गुणवत्ता नियंत्रण प्रणाली लागू करना, सहकारी समितियों द्वारा स्थानीय उत्पादन इकाइयाँ स्थापित करना और जैव उर्वरकों के साथ जैव कीटनाशकों का संयुक्त उपयोग प्रभावी सिद्ध हो सकता है।

नीति समर्थन:

सरकार द्वारा **PKVY, NMSA,** और **PM-PRANAM** जैसी योजनाओं के ज़रिए जैविक खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है। **ICAR** और कृषि विश्वविद्यालय अनुसंधान व प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से किसानों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मार्गदर्शन दे रहे हैं, जिससे जैव उर्वरकों का सुरक्षित और प्रभावी उपयोग सुनिश्चित हो सके।

पारंपरिक/रासायनिक उर्वरक (Conventional Fertilizers):

पारंपरिक उर्वरक वे रासायनिक उत्पाद होते हैं जो सीधे पौधों को आवश्यक पोषक तत्व - जैसे नाइट्रोजन **(N)**, फॉस्फोरस **(P)**, और पोटैशियम **(K)** उपलब्ध कराते हैं। इनका निर्माण औद्योगिक विधियों से होता है और ये तत्काल प्रभाव प्रदान करते हैं, जिससे पौधों की त्वरित वृद्धि होती है। हरित क्रांति की सफलता में इन उर्वरकों का बड़ा योगदान रहा है।

प्रमुख रासायनिक उर्वरक और उनकी भूमिका:

कृषि में प्रयुक्त रासायनिक उर्वरक पौधों को आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करते हैं। यूरिया नाइट्रोजन का स्रोत है, जो पत्तियों की वृद्धि को तेज करता है। डीएपी में नाइट्रोजन और फॉस्फोरस दोनों होते हैं, जो अंकुरण और जड़ों के विकास में सहायक हैं। एमओपी पोटैशियम युक्त होता है, जो फलों की गुणवत्ता और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है। वहीं, एनपीके मिश्रण तीनों प्रमुख पोषक तत्वों का संतुलित स्रोत है, जो समग्र विकास और उत्पादन को बढ़ावा देता है।

दुष्परिणाम और खतरे:

रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक और अनियमित प्रयोग से कई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं

- मिट्टी की अम्लता बढ़ना और संरचना में गिरावट
- सूक्ष्मजीवों की मृत्यु और जैविक गतिविधि में कमी
- भूजल में नाइट्रेट प्रदूषण, जिससे मानव स्वास्थ्य पर खतरा
- हरितगृह गैसों का उत्सर्जन, विशेषतः नाइट्रस ऑक्साइड

कृषि लागत पर प्रभाव

हालाँकि रासायनिक उर्वरक त्वरित लाभ देते हैं, परंतु ये महंगे होते हैं और लगातार बढ़ती कीमतें किसानों के लिए आर्थिक बोझ बनती हैं। इसके अलावा, दीर्घकालिक उपयोग से मृदा की गुणवत्ता गिरती है जिससे उत्पादन भी घटता है, और किसान बार-बार अधिक मात्रा में उर्वरक डालने को विवश होता है।

जैव उर्वरक बनाम पारंपरिक उर्वरक: विस्तृत तुलनात्मक सारणी :

पक्ष	जैव उर्वरक	पारंपरिक उर्वरक
स्वरूप	जीवित सूक्ष्मजीव	रासायनिक यौगिक
प्रभाव की गति	धीमी लेकिन स्थायी	त्वरित लेकिन अस्थायी
लागत	कम	अधिक
मृदा पर प्रभाव	संरचना और जैविकता में सुधार	अम्लता और जैविक क्षरण
पर्यावरणीय प्रभाव	शून्य प्रदूषण	जल और वायु प्रदूषण
फसल की गुणवत्ता	बेहतर स्वाद, पोषण	कभी-कभी स्वाद में कमी
दीर्घकालिक लाभ	उच्च	घटते लाभ
रोग प्रतिरोध	बढ़ाता है	घटा सकता है

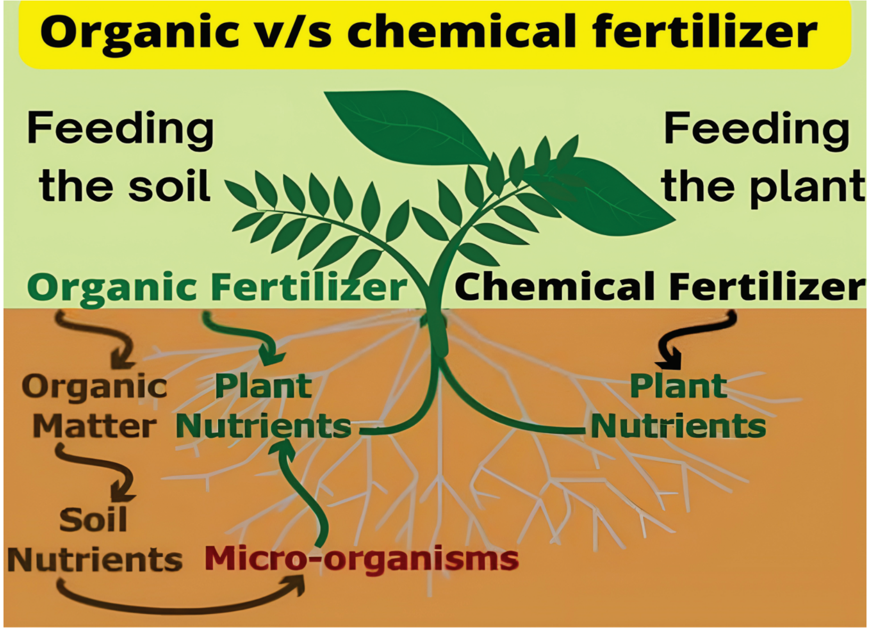

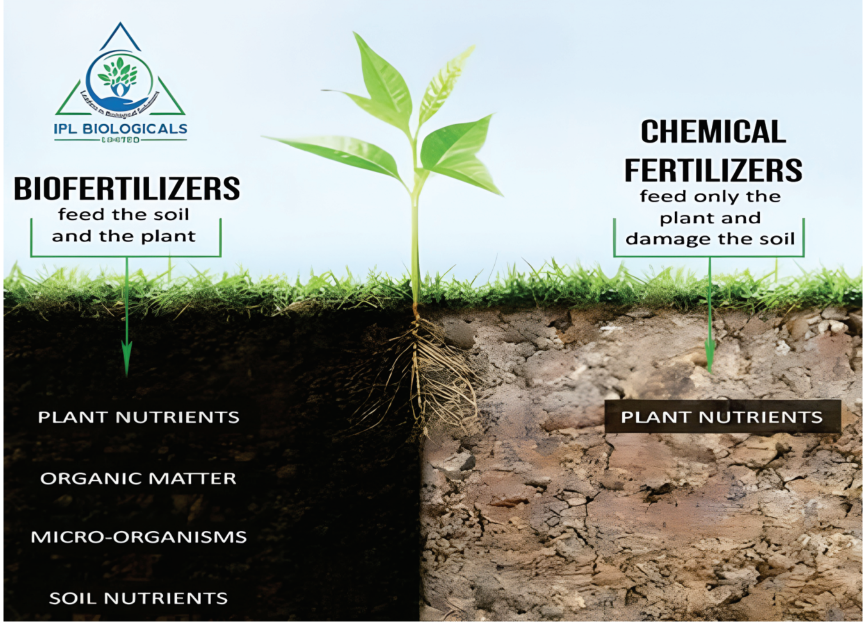

समेकित दृष्टिकोण: एकीकृत पोषण प्रबंधन (INM):

आज की कृषि के लिए न तो केवल जैव उर्वरक पर्याप्त हैं, और न ही केवल रासायनिक उर्वरक। Integrated Nutrient Management (INM) यानी एकीकृत पोषण प्रबंधन का उद्देश्य दोनों का संतुलित उपयोग है। इस पद्धति में जैविक खाद, जैव उर्वरक और न्यूनतम रासायनिक उर्वरकों का समन्वय किया जाता है ताकि उत्पादन, गुणवत्ता और मृदा स्वास्थ्य को संतुलित रखा जा सके।

निष्कर्ष:

जैव उर्वरक केवल एक उर्वरक नहीं, बल्कि सतत कृषि का मार्ग हैं। वे मृदा को जीवित रखते हैं, पौधों की प्राकृतिक वृद्धि को बढ़ाते हैं और पर्यावरण की रक्षा करते हैं। वहीं, पारंपरिक उर्वरक विज्ञान की एक क्रांति थे, लेकिन उनका अंधाधुंध प्रयोग आज कृषि की नींव को कमजोर कर रहा है। हमें ज़रूरत है कि दोनों के बीच संतुलन स्थापित करें- तात्कालिक लाभ और दीर्घकालिक स्थिरता के बीच सामंजस्य बैठाया जाए। किसानों को जागरूक किया जाए, वैज्ञानिक अनुसंधान को व्यवहार में लाया जाए, और नीति-निर्माताओं द्वारा जैविक विकल्पों को प्राथमिकता दी जाए। तभी भारतीय कृषि वास्तव में आत्मनिर्भर, टिकाऊ और समृद्ध बन पाएगी।

6. नारियल के मूल्य संवर्धित उत्पाद: पोषण और नवाचार

जयश्री लाखणोत्रा, उपासना भोपाला, आर्मी आर. पटोलिया, ध्रुव चोचा, शन्मुका अड्डुपा

नारियल, जिसे **"कल्पवृक्ष"** या **"जीवन वृक्ष"** के नाम से जाना जाता है, एक बहुपयोगी उष्णकटिबंधीय फसल है, जिसका मुख्यतः समुद्र तटीय क्षेत्रों में व्यापक रूप से उत्पादन होता है। इसका उपयोग खाद्य, तेल, रेशा तथा उद्योगों में विविध रूपों में किया जाता है। वैश्विक स्तर पर, प्रमुख नारियल उत्पादक देश इंडोनेशिया, फिलीपींस तथा भारत हैं, जो विश्व उत्पादन का प्रमुख हिस्सा योगदान करते हैं। भारत में नारियल की खेती लगभग 21.23 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है, जिससे प्रति वर्ष लगभग 196.88 करोड़ नारियल उत्पन्न होते हैं तथा औसत उत्पादकता लगभग 9,270 नारियल प्रति हेक्टेयर है। भारत के प्रमुख नारियल उत्पादक राज्य केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक एवं आंध्र प्रदेश हैं। गुजरात में यह फसल उभरती हुई है, विशेषकर दक्षिणी तटीय जिलों जैसे वलसाड एवं नवसारी में, जहाँ लगभग 18,000 हेक्टेयर क्षेत्र में नारियल की खेती की जा रही है, जिससे प्रति वर्ष लगभग 14 करोड़ नारियल उत्पन्न हो रहे हैं और उत्पादकता लगभग 7,800 नारियल प्रति हेक्टेयर है। हाल के वर्षों में खाद्य प्रसंस्करण तकनीकों में हुए विकास ने नारियल आधारित उत्पादों के निष्कर्षण एवं संरक्षण की विधियों को अधिक प्रभावशाली बनाया है।

नारियल मूल्य संवर्धन का अर्थ है नारियल से प्राप्त कच्चे उत्पादों को प्रसंस्करण, परिष्करण या विविध उपयोगी रूपों में परिवर्तित कर उनकी उपयोगिता, गुणवत्ता, पोषण स्तर और बाज़ार मूल्य को बढ़ाना। नारियल का हर भाग-गूदा, जल, दूध, खोल, छिलका व फूलों का रस-विभिन्न प्रकार के खाद्य, औषधीय, सौंदर्य एवं औद्योगिक उत्पादों में परिवर्तित किया जा सकता है। जैसे कि नारियल जल, दूध, मलाई, तेल, कोपरा, डिसिकेटेड कोकोनट, नारियल गुड़, नारियल शक्कर इत्यादि प्रमुख मूल्य संवर्धित उत्पाद हैं। ये उत्पाद पोषक तत्वों से भरपूर, स्वास्थ्य के लिए लाभकारी और लंबे समय तक सुरक्षित रहने योग्य होते हैं। मूल्य संवर्धन न केवल नारियल उत्पादों की आर्थिक उपयोगिता बढ़ाता है, बल्कि किसानों को बेहतर आय, रोजगार के अवसर और ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन भी प्रदान करता है। नारियल से बनने वाले अन्य प्रमुख उत्पादों में **मीठा सफेद नम नारियल**, **भुना हुआ नारियल**, **क्रीमी नारियल** एवं **कोमल नारियल** शामिल हैं, जो आज के समय में चॉकलेट एवं कन्फेक्शनरी उद्योग में व्यापक रूप से उपयोग किए जा रहे हैं। नारियल तेल निष्कर्षण के बाद बचा हुआ खली (केक) पशु आहार के रूप में उपयोग में लाया जाता है, जिससे यह फसल "शून्य अपशिष्ट" की अवधारणा को भी साकार करती है। वर्तमान में नारियल प्रसंस्करण एवं भंडारण तकनीकों में हुए नवाचारों ने इसकी गुणवत्ता, शेल्फ लाइफ तथा बाजार मूल्य में उल्लेखनीय वृद्धि की है।

नारियल से निर्मित मूल्य संवर्धित उत्पाद:

हमारे देश में नारियल से प्राप्त प्रमुख उत्पादों में कोमल (टेंडर) एवं परिपक्व (मेच्योर) सम्पूर्ण नारियल, खोपा (कॉपरा), ताड़ी, नीरा, गुड़, नारियल मिष्ठान्न, नारियल चीनी, सिरका आदि सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त नारियल से बने कुछ नवीन व्यंजन जैसे नारियल बोली, केला-नारियल केक आदि भी लोकप्रिय हो रहे हैं। नारियल एक स्वादिष्ट पूरक आहार के रूप में अपनी पहचान बना चुका है।परंतु पारंपरिक रूप से नारियल का प्रयोग करने हेतु पहले उसे दो भागों में फोड़ना, कद्दूकस करना एवं फिर पकाने की प्रक्रिया अपनानी पड़ती है, जो समय एवं श्रमसाध्य होती है। यदि बाजार में पहले से कद्दूकस किया हुआ नारियल, नारियल का गाढ़ा दूध एवं उससे बने विविध व्यंजन उपलब्ध कराए जाएँ, तो विशेष रूप से युवाओं में इन उत्पादों के प्रति रुचि एवं उपयोग निश्चित रूप से बढ़ेगा। इससे न केवल उपभोक्ताओं को सुविधा होगी, बल्कि नारियल उद्योग को भी नई दिशा मिलेगी। नीचे नारियल से प्राप्त प्रमुख मूल्य संवर्धित उत्पादों की सूची दी गई है:

1. खाद्य उत्पाद :

नारियल पानी

नारियल पानी

नारियल मलाई

नारियल तेल

खोपा (कोपरा)

सूखा नारियल

नारियल गुड़

नारियल चीनी

नारियल शहद

नारियल पानी:

एक महत्त्वपूर्ण मूल्य संवर्धित उत्पाद है, जो कच्चे नारियल से प्राप्त किया जाता है। यह पोषक तत्वों से भरपूर, स्वाभाविक रूप से मीठा तथा शरीर को ताजगी प्रदान करने वाला पेय है। नारियल जल में कैलोरी कम होती है, यह कोलेस्ट्रॉल रहित होता है तथा पोटैशियम, सोडियम, मैग्नीशियम एवं कैल्शियम जैसे आवश्यक इलेक्ट्रोलाइट्स की प्रचुर मात्रा में उपस्थिति इसे शरीर में जल संतुलन बनाए रखने के लिए उपयुक्त बनाती है।

इसके अतिरिक्त इसमें प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट्स और जैव सक्रिय एंजाइम भी पाए जाते हैं, जो पाचन तंत्र को सुधारने, हृदय स्वास्थ्य को बनाए रखने एवं वृक्क (गुर्दे) की कार्यक्षमता को बढ़ावा देने में सहायक होते हैं। इसके स्वास्थ्यवर्धक गुणों तथा ताजगीपूर्ण स्वाद के कारण नारियल जल की मांग स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ताओं के बीच अत्यधिक बढ़ी है। वर्तमान में यह बोतलों, कैनों और टेट्रा पैक में व्यावसायिक रूप से उपलब्ध है तथा देशी और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में स्वास्थ्यवर्धक पेय के रूप में इसका बाज़ार निरंतर विस्तार पा रहा है।

नारियल मलाई (क्रीम):

एक उच्च मूल्य वाला मूल्य संवर्धित उत्पाद है, जो परिपक्व नारियल के गूदे से तैयार की जाती है। यह घना, सफेद एवं मलाईदार पदार्थ वसा, प्रोटीन, विटामिन्स (विशेषकर विटामिन C, E, B1, B3, B5 और B6) तथा मिनरल्स जैसे आयरन, कैल्शियम, सेलेनियम और मैग्नीशियम से भरपूर होता है। नारियल क्रीम में मध्यम श्रृंखला वसीय अम्ल की उपस्थिति इसे हृदय स्वास्थ्य, ऊर्जा वृद्धि, प्रतिरक्षा प्रणाली की मजबूती और वजन प्रबंधन में सहायक बनाती है। यह लैक्टोज रहित होने के कारण दूध उत्पादों का विकल्प बनकर शाकाहारी एवं दुग्ध असहिष्णुता वाले लोगों के लिए अत्यंत उपयोगी है। नारियल मलाई का उपयोग मिठाइयों, करी, बेकरी उत्पादों, आइसक्रीम, सौंदर्य प्रसाधनों एवं स्वास्थ्य उत्पादों में व्यापक रूप से होता है। इसके बहुउपयोगी स्वभाव, पोषण मूल्य और शुद्धता के कारण इसकी मांग राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में तीव्र गति से बढ़ रही है।

नारियल दूध:

एक बहुमूल्य मूल्य संवर्धित उत्पाद है, जो परिपक्व नारियल के गूदे को पीसकर एवं पानी मिलाकर छानने से प्राप्त किया जाता है। यह गाढ़ा, सफेद तरल पोषक तत्वों से भरपूर होता है, जिसमें वसा, प्रोटीन, आयरन, मैग्नीशियम, पोटैशियम, और विटामिन C, E, B1, B3, B5 तथा B6 प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। नारियल दूध में उपस्थित मध्यम श्रृंखला हृदय स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होते हैं। यह लैक्टोज मुक्त होता है, इसलिए यह शाकाहारियों एवं दूध से एलर्जी रखने वालों के लिए उपयुक्त दुग्ध विकल्प है। नारियल दूध का उपयोग व्यंजन, मिठाइयों, शेक, करी, सौंदर्य उत्पादों एवं औषधीय बनावटमें व्यापक रूप से किया जाता है। इसके स्वास्थ्य लाभ, शाकाहारी प्रकृति और बहुउपयोगी गुणों के कारण इसकी घरेलू तथा वैश्विक बाजारों में मांग निरंतर बढ़ती जा रही है।

खाद्य नारियल तेल:

एक प्रमुख मूल्य संवर्धित उत्पाद है, जिसे सूखे नारियल गूदा (सूखा नारियल) से निकाला जाता है। यह हल्के स्वाद एवं सुगंध वाला तेल संतृप्त वसा, विशेषकर मध्यम श्रृंखला वसीय अम्ल (MCTs) जैसे लॉरिक एसिड से भरपूर होता है, जो शरीर को शीघ्र ऊर्जा प्रदान करता है और प्रतिरक्षा प्रणाली को सशक्त बनाता है। नारियल तेल में एंटीऑक्सीडेंट्स, एंटीवायरल एवं एंटीबैक्टीरियल गुण भी होते हैं, जिससे यह हृदय स्वास्थ्य, पाचन और त्वचा के लिए लाभकारी माना जाता है। इसे पकाने, तलने, मिठाइयाँ बनाने और पारंपरिक आयुर्वेदिक उपचारों में भी उपयोग किया जाता है। इसकी प्राकृतिकता, लंबी शेल्फ लाइफ और स्वास्थ्य लाभों के कारण घरेलू उपभोक्ताओं, स्वास्थ्य जागरूक लोगों एवं आयुर्वेदिक उद्योगों में इसकी मांग लगातार बढ़ रही है, जिससे यह घरेलू और निर्यात बाजार दोनों में एक उच्च मांग वाला उत्पाद बन गया है।

कोपरा:

एक महत्त्वपूर्ण मूल्य संवर्धित नारियल उत्पाद है, जो परिपक्व नारियल के गूदे को सुखाकर तैयार किया जाता है। यह नारियल तेल निकालने का मुख्य कच्चा माल है और इसमें लगभग ६०–६५% तक तेल की मात्रा पाई जाती है। कोपरा में वसा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, कैल्शियम, फॉस्फोरस और आयरन जैसे पोषक तत्व भी मौजूद होते हैं। इसका उपयोग मुख्यतः खाद्य नारियल तेल, सौंदर्य प्रसाधन, साबुन निर्माण, पशु आहार, और आयुर्वेदिक दवाओं के निर्माण में किया जाता है। उच्च तेल सामग्री और बहुउपयोगी स्वभाव के कारण घरेलू उपभोक्ताओं एवं तेल उद्योग में इसकी स्थिर और बढ़ती हुई मांग बनी रहती है, विशेषकर दक्षिण भारत और निर्यात बाजारों में।

डिसिकेटेड कोकोनट (सूखा नारियल):

एक उच्च गुणवत्ता वाला मूल्य संवर्धित नारियल उत्पाद है, जो परिपक्व नारियल के गूदे को छीलकर, धोकर, काटकर, सुखाकर और बारीक कतरन के रूप में तैयार किया जाता है। इसमें नमी की मात्रा बहुत कम लगभग 2–3% होती है, जिससे यह लंबे समय तक सुरक्षित रहता है। यह फाइबर, प्रोटीन, आयरन और अन्य खनिज तत्वों से भरपूर होता है। डिसिकेटेड कोकोनट का उपयोग मुख्यतः बेकरी उत्पादों, मिठाइयों, चॉकलेट, कुकीज़, हलवे, नमकीन और विभिन्न स्नैक्स के निर्माण में किया जाता है। यह शाकाहारी और लैक्टोज मुक्त होने के कारण स्वास्थ्य जागरूक उपभोक्ताओं में लोकप्रिय है। इसके लंबे भंडारण समय, पोषण गुणों और बहुव्यापक उपयोगिता के कारण यह उत्पाद घरेलू खाद्य उद्योग के साथ-साथ निर्यात बाजारों में भी अत्यधिक मांग में रहता है।

सूखा नारियल (गूदा) जो विशेषतः बेकरी एवं मिठाई उद्योगों में उपयोग होता है, को कोकोनट के कठोर खोल से निकालकर, उसके भूरे आवरण (टेस्टा) को सावधानीपूर्वक

हटाकर, अच्छी तरह से धोकर, मशीनों द्वारा काटा जाता है। तत्पश्चात इसे भाप या गर्म जल से पाश्चराइज़ किया जाता है जिससे उसमें विद्यमान साल्मोनेला जैसे रोगजनक जीवाणु एवं हानिकारक एंजाइम (लाइपेस) निष्क्रिय हो जाते हैं। इसके पश्चात गर्म हवा से सुखाया जाता है जिससे इसकी नमी 4% से भी कम रह जाती है, जो कि इसकी दीर्घकालिक भंडारण क्षमता के लिए अनिवार्य है (जबकि अधिकतम अनुमेय नमी स्तर 5% होता है)।

सुखाने के बाद, डिसिकेटेड कोकोनट को उसकी कणिकाओं के आकार के अनुसार विभिन्न ग्रेडों में विभाजित किया जाता है - जैसे कि एक्स्ट्रा फाइन, मैकरून (फाइन), मीडियम तथा कोर्स। उच्च गुणवत्ता वाला डिसिकेटेड कोकोनट सफेद रंग का, अशुद्धियों से मुक्त तथा समरूप बनावट वाला होता है। इसकी वसा में मुक्त वसीय अम्ल की मात्रा 0.1% से कम होनी चाहिए, ताकि इसका स्वाद, गुणवत्ता एवं ताजगी बनी रहे।

नारियल गुड़:

एक प्राकृतिक और स्वास्थ्यवर्धक मूल्य संवर्धित उत्पाद है, जो नारियल के फूलों के रस नीरा) को उबालकर गाढ़ा करके ठंडा करने से तैयार किया जाता है। यह पारंपरिक गुड़ की तुलना में अधिक स्वादिष्ट, सुगंधित और पोषक तत्वों से भरपूर होता है। इसमें आयरन, पोटैशियम, कैल्शियम, जिंक, विटामिन B-कॉम्प्लेक्स और एंटीऑक्सीडेंट्स पाए जाते हैं, जो रक्तवर्धक, पाचन सुधारक और ऊर्जा बढ़ाने वाले होते हैं। नारियल गुड़ का उपयोग मिठाइयों, पेयों, आयुर्वेदिक औषधियों तथा प्राकृतिक स्वीटनर के रूप में किया जाता है। यह ग्लाइसेमिक इंडेक्स में कम होता है, जिससे यह मधुमेह रोगियों के लिए भी अपेक्षाकृत सुरक्षित माना जाता है। रासायनिक मुक्त, जैविक एवं स्वास्थ्यप्रद विकल्प होने के कारण इसकी मांग शहरी उपभोक्ताओं और अंतरराष्ट्रीय जैविक उत्पाद बाजार में तेजी से बढ़ रही है।

नारियल शक्कर:

एक प्राकृतिक, कम ग्लाइसेमिक इंडेक्स वाला मूल्य संवर्धित उत्पाद है, जो नारियल के फूलों से निकाले गए रस (नीरा) को धीरे-धीरे उबालकर और सुखाकर क्रिस्टल या पाउडर के रूप में तैयार किया जाता है। इसमें सुक्रोज के साथ-साथ ग्लूकोज़ और फ्रक्टोज़ भी पाए जाते हैं तथा यह आयरन, ज़िंक, कैल्शियम, पोटैशियम और विटामिन B1, B2, B3 व B6 जैसे पोषक तत्वों से भरपूर होता है। नारियल शक्कर प्राकृतिक मिठास का एक उत्कृष्ट स्रोत है और पारंपरिक चीनी का स्वस्थ विकल्प मानी जाती है, जो रक्त शर्करा में तीव्र वृद्धि नहीं करती। इसका उपयोग चाय, कॉफी, मिठाइयों, बेकरी वस्तुओं और पारंपरिक व्यंजनों में किया जाता है। रासायनिक मुक्त, शाकाहारी और जैविक होने के कारण नारियल शक्कर की मांग स्वास्थ्य-सचेत उपभोक्ताओं और अंतरराष्ट्रीय स्वास्थ्य खाद्य बाज़ार में लगातार बढ़ रही है।

नारियल शहद:

नारियल से प्राप्त एक विशिष्ट मूल्य संवर्धित उत्पाद है, जो नारियल के फूलों से निकाले गए मीठे रस (नीरा) को उबालकर गाढ़ा करके तैयार किया जाता है। यह पारंपरिक मधु जैसा होता है, किंतु इसे बिना मधुमक्खी की सहायता के बनाया जाता है, जिससे यह पूर्णतः वनस्पति आधारित और प्राकृतिक उत्पाद बन जाता है। नारियल शहद का रंग सुनहरा से लेकर गहरा भूरा हो सकता है और इसका स्वाद हल्का कारमेलयुक्त व सौम्य होता है। यह शहद न केवल स्वादिष्ट होता है, बल्कि इसमें प्राकृतिक शर्करा, खनिज तत्व (जैसे पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम) और विटामिन बी समूह जैसे पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। यह ऊर्जा बढ़ाने वाला, पाचन में सहायक और रोग प्रतिरोधक क्षमता को सशक्त करने वाला उत्पाद माना जाता है। नारियल शहद का उपयोग मिठाईयों, पेयों, ब्रेड, पराठों या पैनकेक जैसे नाश्तों के साथ किया जा सकता है। यह रासायनिक चीनी का एक उत्तम और स्वास्थ्यवर्धक विकल्प है, जिससे उपभोक्ताओं के बीच इसकी मांग निरंतर बढ़ रही है। नारियल शहद न केवल पोषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह नारियल किसानों और उद्यमियों के लिए अतिरिक्त आय का एक सशक्त माध्यम भी बनता जा रहा है, जिससे यह नारियल आधारित मूल्य संवर्धन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम साबित हो रहा है।

नारियल केवल एक खाद्य उत्पाद तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका प्रत्येक भाग—गूदा, खोल, भूसी, पत्तियाँ व तना- बहुपयोगी है और इससे अनेक अखाद्य मूल्य संवर्धित उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं। ये उत्पाद न केवल ग्रामीण आजीविका के लिए सहायक हैं, बल्कि पर्यावरण के अनुकूल, पुनः उपयोग योग्य एवं जैविक उत्पादों के रूप में वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बना रहे हैं। ऐसे कुछ प्रमुख नारियल आधारित अखाद्य मूल्य संवर्धित उत्पाद निम्नलिखित हैं:

नारियल खोल से कोयला:

नारियल के सूखे खोल को जलाकर उच्च गुणवत्ता वाला कोयला तैयार किया जाता है, जो ईंधन, धूपबत्ती, सक्रिय कार्बन व जल शोधक उद्योग में उपयोग होता है।

एक्टिवेटेड कार्बन:

नारियल के खोल से बने कोयले को प्रसंस्कृत कर यह उत्पाद तैयार किया जाता है, जो जल शोधन, वायु शुद्धिकरण, औषधियों और रासायनिक उद्योगों में प्रयुक्त होता है।

कोयर:

नारियल की बाहरी भूसी (फाइबर) से तैयार यह रेशा

रस्सी, मैट, गद्दे, ब्रश, थैले और इको-फ्रेंडली उत्पादों के निर्माण में उपयोग होता है।

कोयर पिठ:

कोयर निकालने के बाद बचा बारीक पाउडरनुमा अवशेष, जो कृषि में जैविक उर्वरक, मिट्टी सुधारक और पॉटिंग मिक्स के रूप में बहुत उपयोगी है।

हस्क क्राफ्ट्स:

नारियल के छिलके और खोल से सजावटी वस्तुएँ, खिलौने, शो-पीस और हस्तशिल्प उत्पाद बनाए जाते हैं।

नारियल की लकड़ी: पुराने पेड़ों के तनों से प्राप्त लकड़ी का उपयोग फर्नीचर, फ्लोरिंग और निर्माण सामग्री में किया जाता है।

नारियल के पत्तों से उत्पाद: नारियल के पत्तों से टोकरियाँ, झाड़ू, छप्पर और सजावटी वस्तुएँ बनाई जाती हैं।

नारियल खोल से कोयला

कोयर

कोयर पिठ

नारियल से न केवल खाद्य और औद्योगिक उत्पाद तैयार किए जाते हैं, बल्कि यह प्राकृतिक सौंदर्य प्रसाधन उद्योग का भी एक महत्वपूर्ण घटक बन चुका है। नारियल तेल और उसके उप-उत्पादों में पाए जाने वाले **विटामिन E, लॉरिक एसिड और एंटीऑक्सीडेंट्स,** त्वचा और बालों के लिए अत्यंत लाभकारी होते हैं। इसलिए नारियल का उपयोग अनेक प्राकृतिक एवं जैविक कॉस्मेटिक उत्पादों में किया जा रहा है।

नारियल तेल सबसे लोकप्रिय सौंदर्य घटक है, जिसका उपयोग त्वचा को नमी प्रदान करने, बालों की चमक बढ़ाने, डैंड्रफ रोकने, होंठों को मुलायम बनाने और मेकअप रिमूवर के रूप में किया जाता है। इसके एंटीबैक्टीरियल और एंटीफंगल गुण इसे कील-मुहांसे, खुजली, त्वचा संक्रमण और एक्ज़िमा जैसी समस्याओं में भी उपयोगी बनाते हैं।

नारियल दूध और मलाई (क्रीम) से बनाए गए फेस पैक, बॉडी लोशन, स्क्रब और मॉइस्चराइज़र त्वचा को कोमलता और पोषण प्रदान करते हैं। नारियल आधारित **साबुन, शैंपू, कंडीशनर और बॉडी बटर** अब बाजार में तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं, विशेषकर उन उपभोक्ताओं के बीच जो सिंथेटिक और केमिकल युक्त उत्पादों से बचना चाहते हैं।

इसके अतिरिक्त, नारियल से बने उत्पादों का उपयोग सौर सुरक्षा क्रीम, त्वचा टोनर, क्लींजर, और प्राकृतिक परफ्यूम्स में भी किया जाता है। नारियल आधारित कॉस्मेटिक उत्पाद त्वचा की नमी को बनाए रखते हैं, झुर्रियों को कम करते हैं और त्वचा को युवा बनाए रखने में सहायक होते हैं।

बाजार की दृष्टि से, नारियल आधारित सौंदर्य उत्पादों की मांग राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर तेजी से बढ़ रही है, विशेषकर जैविक और हरित सौंदर्य उत्पादों के बढ़ते चलन के कारण। उपभोक्ताओं की प्राकृतिक, सुरक्षित और पारंपरिक विकल्पों की ओर बढ़ती रुचि ने नारियल को कॉस्मेटिक उद्योग में एक प्रमुख स्थान प्रदान किया है।

इस प्रकार, नारियल आधारित प्रसाधन उत्पाद न केवल प्राकृतिक सौंदर्य का पोषण करते हैं, बल्कि सुरक्षित, टिकाऊ और पर्यावरण हितैषी विकल्प के रूप में सुंदरता उद्योग में अपनी विशेष पहचान बना रहे हैं।

नारियल के मूल्य संवर्धित उत्पाद न केवल पोषण से भरपूर और स्वास्थ्यवर्धक हैं, बल्कि इनकी बहुआयामी उपयोगिता के कारण घरेलू एवं वैश्विक बाजारों में इनकी मांग तेजी से बढ़ रही है। शुद्धता, प्राकृतिक गुण, लैक्टोज-मुक्त विकल्प, आयुर्वेदिक महत्व और लंबी शेल्फ लाइफ जैसे कारणों से ये उत्पाद स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ताओं के बीच लोकप्रिय हो रहे हैं। बदलती जीवनशैली, जैविक उत्पादों की ओर बढ़ता रुझान और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों की आवश्यकता को देखते हुए नारियल आधारित उत्पादों की बाजार में अपार संभावनाएँ हैं। अतः, नारियल के मूल्य संवर्धन से न केवल किसानों को अतिरिक्त आय का स्रोत प्राप्त होसकता है, बल्कि यह ग्रामीण उद्योगों और निर्यात को भी मजबूती प्रदान कर सकता है।

7. किसान उत्पादक संगठनों के माध्यम से छोटे किसानों का सशक्तिकरण

किरण रेड्डी, कणसागरा हार्दी, आराधना चिलवाल, हेतल देत्रोजा, राजा राम चौधरी, सी एस प्रहराज
भाकृअनुप - भारतीय मूँगफली अनुसंधान संस्थान

परिचय

भारत में 85% से अधिक किसान छोटे और सीमांत हैं, जिनकी आय और बाजार तक पहुंच बढ़ाना एक बड़ी चुनौती है। ये किसान आमतौर पर कम सौदेबाज़ी शक्ति, उच्च इनपुट लागत, सीमित बाज़ार पहुँच और तकनीकी मार्गदर्शन की कमी जैसी समस्याओं का सामना करते हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए किसान उत्पादक संगठन (FPO) एक नवाचारपूर्ण और प्रभावशाली मॉडल के रूप में उभरे हैं। FPO किसानों को एकजुट होकर एक साझा संस्थान की तरह कार्य करने का मंच प्रदान करते हैं, जिससे वे सामूहिक लाभ प्राप्त कर सकें।

किसान उत्पादक संगठन क्या है?

किसान उत्पादक संगठन किसानों द्वारा गठित एक वैधानिक संस्था है, जिसका मुख्य उद्देश्य उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को सामूहिक रूप से बेहतर बनाना है। ये संगठन प्रोड्यूसर कंपनी, सहकारी समिति या सेक्शन 8 कंपनी जैसे कानूनी ढाँचों के तहत पंजीकृत होते हैं। FPO किसानों को उत्पादन, खरीद, भंडारण, प्रसंस्करण और विपणन जैसे निर्णय सामूहिक रूप से लेने की शक्ति देते हैं।

किसान उत्पादक संगठन का मूल सिद्धांत यह है कि किसान केवल उत्पादक न रहकर एक उद्यमी बनें - ताकि उन्हें बेहतर कीमत, बाज़ार में ताकत और अधिक आत्मनिर्भरता मिल सके।

किसान उत्पादक संगठन क्यों महत्वपूर्ण हैं?

किसान उत्पादक संगठन किसानों को उनकी व्यक्तिगत सीमाओं को पार कर सामूहिक रूप से कार्य करने में मदद करता है।

इसके प्रमुख लाभ हैं:

- **इनपुट लागत में कमी:** बीज, उर्वरक, कीटनाशक और यंत्र सामूहिक रूप से खरीदने से लागत घटती है।
- **बाज़ार में बेहतर दाम:** सामूहिक विपणन से बिचौलियों की भूमिका घटती है और किसानों को बेहतर मूल्य मिलता है।
- **बाज़ार तक सीधी पहुँच:** थोक खरीदारों, प्रोसेसरों और निर्यातकों से सीधा संपर्क होता है।
- **तकनीकी प्रशिक्षण:** किसान आधुनिक कृषि तकनीकों और सर्वोत्तम प्रथाओं से अवगत होते हैं।

वित्तीय सेवाओं तक पहुँच:

ऋण, बीमा और सरकारी योजनाओं का लाभ आसानी से मिलता है।

सरकारी सहयोग

किसान उत्पादक संगठन की ताकत को देखते हुए भारत सरकार ने 2020 में 10,000 FPO बनाने की केंद्रीय योजना शुरू की। इस योजना के अंतर्गत प्रत्येक FPO को वित्तीय सहायता, प्रशिक्षण और व्यवसाय विकास सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। योजना के मुख्य घटक हैं:

- SFAC, NABARD और राज्य सरकारें जैसे संस्थान इसे लागू करने में सहयोग करते हैं।
- CBBO (क्लस्टर आधारित व्यवसाय संगठन) द्वारा मार्गदर्शन और निगरानी दी जाती है।
- इक्विटी अनुदान और क्रेडिट गारंटी, जिससे FPO बुनियादी अवसंरचना और पूंजी बना सकें।

यह योजना ग्रामीण अर्थव्यवस्था को संगठित करने और किसानों को मूल्य श्रृंखला से जोड़ने की दिशा में एक बड़ा कदम है।

विस्तारित अवसर

FPO केवल उपज बेचने तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे कई नवाचारपूर्ण क्षेत्रों में भी कदम रख रहे हैं, जैसे:

- कृषि उत्पादों का प्रसंस्करण और पैकेजिंग
- स्वयं के ब्रांड के तहत विपणन
- जैविक खेती और प्रमाणन
- अनुबंध कृषि एवं ई-कॉमर्स से जुड़ाव
- ग्रामीण पर्यटन और लघु उद्यम

महिलाओं और युवाओं द्वारा संचालित FPO ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार और उद्यमिता को बढ़ावा देने में सहायक बन रहे हैं।

चुनौतियाँ

FPO के सामने कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ भी हैं:

- **प्रशिक्षित प्रबंधन की कमी:**

  संगठन चलाने के लिए आवश्यक व्यावसायिक और तकनीकी ज्ञान का अभाव।
- **अपर्याप्त पूंजी और अवसंरचना:**

  गोदाम, प्रसंस्करण इकाई और परिवहन साधनों की कमी।
- **सदस्यों की भागीदारी में कमी:**

  कई बार किसान लाभों के प्रति अनभिज्ञ या संदेहग्रस्त रहते हैं।
- **सरकारी सहायता पर निर्भरता:**

  कई FPO आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं हो पाते हैं।

इन चुनौतियों से निपटने के लिए दीर्घकालिक मार्गदर्शन, नेतृत्व विकास और डिजिटल सशक्तिकरण आवश्यक है।

निष्कर्ष

FPO भारतीय कृषि प्रणाली में परिवर्तन की एक मजबूत आधारशिला हैं। वे किसानों को संगठित करके उन्हें अधिक प्रभावी, आत्मनिर्भर और बाज़ारोन्मुख बनाते हैं। यदि इन्हें निरंतर प्रशिक्षण, नीति समर्थन और निजी भागीदारी मिलती रहे, तो ये संगठन आने वाले समय में ग्रामीण समृद्धि और कृषि विकास के मुख्य स्तंभ बन सकते हैं।

8. अफ्लाटॉक्सिन संदूषण और मूँगफली मेंइसका प्रबंधन

नंदिनी जी ए, नीलिमा कर्माकर, सुष्मिता सिंह, पलापर्थी धर्मतेजा

परिचय

मूँगफली (Arachis hypogaea L.) केवल एक तैलीय फसल नहीं है, बल्कि यह पोषण से भरपूर है और लाखों लोगों की आजीविका का महत्वपूर्ण स्रोत भी है।प्रोटीन, स्वस्थ वसा और आवश्यक खनिजों से भरपूर, यह भूख और कुपोषण से निपटने में मदद करता है, खासकर उन क्षेत्रों में जहां पशु प्रोटीन तक पहुंच सीमित है। कई छोटे किसानों के लिए, मूँगफली की खेती एक महत्वपूर्ण आय स्रोत है। हालांकि, मूँगफली की खेती कई चुनौतियों से भरी होती है जैसे सूखा, कीट (जैसे एफिड्स और लीफ माइनर), और बीमारियाँ (जैसे स्टेम रॉट और लीफ स्पॉट), जो उपज को काफी घटा सकती हैं। एक और बड़ी चिंता हैअफ्लाटॉक्सिन नामक विषाक्त पदार्थ का संदूषण, जो Aspergillus flavus और Aspergillus parasiticus जैसे फफूंदों के कारण होता है। ये विष मूँगफली को खाने और व्यापार के लिए असुरक्षित बना सकते हैं और स्वास्थ्य पर गंभीर असर डाल सकते हैं।

मूँगफली में अफ्लाटॉक्सिन का विकास

मूँगफली में एफ्लाटॉक्सिन तब विकसित होता है जब Aspergillus कवक, जो आमतौर पर मिट्टी में पाया जाता है, विभिन्न चरणों में फलियों को संक्रमित करता है - खेत में खेती से लेकर फसल के बाद के भंडारण तक। उनकी वृद्धि और विष उत्पादन कई पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होता है जैसे उच्च मिट्टी का तापमान, कम मिट्टी की नमी, फसल के बाद के चरणों के दौरान सूखे का तनाव और भंडारण के दौरान बढ़ी हुई आर्द्रता और तापमान। कीट क्षति कवक के लिए प्रवेश बिंदु बनाकर संवेदनशीलता को और बढ़ा सकती है। एफ्लाटॉक्सिन संदूषण की गंभीरता इन कारकों की परस्पर क्रिया पर निर्भर करती है, और कटाई के बाद की अनुचित प्रथाएं, विशेष रूप से अपर्याप्त सुखाने और खराब भंडारण की स्थिति जोखिम को काफी बढ़ा सकती हैं।

अफ्लाटॉक्सिन के प्रकार और स्वास्थ्य पर प्रभाव

एफ्लाटॉक्सिन एस्परगिलस कवक द्वारा उत्पादित हानिकारक यौगिक हैं। मूँगफली प्रभावित होने वाली प्रमुख फसलों में से एक है, लेकिन एफ्लाटॉक्सिन मक्का, चावल, गेहूं, सोयाबीन, सूरजमुखी और बादाम और पिस्ता जैसे मेवों को भी दूषित कर सकता है। दूषित पशु आहार के कारण दूध में एफ्लाटॉक्सिन एम1 दिखाई दे सकता है, जो मानव खाद्य श्रृंखला में प्रवेश कर सकता है। चार मुख्य प्रकार हैं- B1, B2, G1, और G2। इनमें से एफ्लाटॉक्सिन बी1 सबसे जहरीला है। एफ्लाटॉक्सिन मनुष्यों और जानवरों दोनों में गंभीर विषाक्त प्रभावों से जुड़े हैं, जिनमें लिवर कैंसर, कमजोर प्रतिरक्षा, आनुवंशिक क्षति, जन्म दोष, सूजन और श्वसन समस्याएं शामिल हैं (मासोमो, 2020)। विशेष रूप से एफ्लाटॉक्सिन बी1, लीवर कैंसर से दृढ़ता से जुड़ा हुआ है। एफ्लाटॉक्सिन के उच्च स्तर के सेवन से तीव्र एफ्लाटॉक्सिकोसिस हो सकता है, जिसके परिणामस्वरूप मृत्यु हो सकती है।

मूँगफली मेंअफ्लाटॉक्सिन संदूषण के प्रबंधन के उपाय:

मूँगफली में एफ्लाटॉक्सिन संदूषण को कम करने के लिए प्रबंधन प्रथाएँ Aspergillus द्वारा एफ्लाटॉक्सिन संदूषण कटाई से पहले और कटाई के बाद दोनों चरणों के दौरान एक प्रमुख मुद्दा है। भोजन और चारा प्रणालियों में इसके प्रवेश को कम करने के लिए हर चरण में रणनीतियों के संयोजन की आवश्यकता होती है। चूँकि कोई भी एक विधि पर्याप्त नहीं है, एफ्लाटॉक्सिन को प्रभावी ढंग से नियंत्रित करने के लिए क्षेत्र से प्रसंस्करण तक एक एकीकृत प्रबंधन दृष्टिकोण आवश्यक है|

1. **जैविक नियंत्रण (Biological Control):**

   एफ्लाटॉक्सिन को कम करने का एक आशाजनक तरीका जैविक नियंत्रण है। वैज्ञानिकों ने पाया है कि Aspergillus flavus के गैर विषैले (एटॉक्सिजेनिक) उपभेदों को मिट्टी में लगाने से हानिकारक उपभेदों से मुकाबला किया जा सकता है। ये मित्रवत कवक विषैले कवकों को मौका मिलने से पहले ही "कब्जा कर लेते हैं"। Aflasafe Sn01 जैसे उत्पादों ने मूँगफली और मक्का जैसी फसलों में एफ्लाटॉक्सिन के स्तर को 70-90% तक सफलतापूर्वक कम कर दिया है। इस विधि में छोटे अनाज वाहक के साथ मिश्रित अच्छे कवक को लागू करना शामिल है, जो उन्हें बढ़ने और मिट्टी के वातावरण पर हावी होने की अनुमति देता है। अन्य प्राकृतिक सहायकों में लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया और बैसिलस प्रजातियाँ शामिल हैं, जो कार्बनिक एसिड और एंजाइम का उत्पादन करते हैं जो फंगल विकास को रोकते हैं, जो रासायनिक कीटनाशकों के लिए एक पर्यावरण-अनुकूल विकल्प प्रदान करते हैं।

2. **सांस्कृतिक प्रथाएँ:**

   मूँगफली में एफ्लाटॉक्सिन संदूषण को रोकने में सांस्कृतिक प्रथाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कटाई से पहले और बाद की उचित देखभाल और प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग जैसी तकनीकें फसल के स्वास्थ्य को

बनाए रखने और फंगल संक्रमण को कम करने में मदद करती हैं। जो किसान ग्रीष्मकालीन जुताई, फफूंदनाशकों से बीज उपचार, ट्राइकोडर्मा जैसे लाभकारी कवक से समृद्ध जैविक संशोधनों का उपयोग और बढ़ते मौसम के दौरान नीम के तेल के स्प्रे जैसी प्रथाओं को अपनाते हैं, वे अक्सर संदूषण के काफी कम स्तर का अनुभव करते हैं।

3. उत्तम कृषि पद्धतियाँ :

एफ्लाटॉक्सिन संदूषण की रोकथाम फसल कटाई से काफी पहले ही शुरू हो जाती है, अच्छी कृषि पद्धतियों को अपनाने से। ये प्रथाएं मजबूत, लचीली फसलें बनाने में मदद करती हैं जो फंगल संक्रमण के प्रति कम संवेदनशील होती हैं। मुख्य रणनीतियों में फसल चक्र, प्रभावी कीट और खरपतवार नियंत्रण, समय पर बुआई और कटाई, और संतुलित उर्वरक शामिल हैं। प्रतिरोधी किस्मों का चयन करना और मिट्टी की स्वस्थ स्थिति बनाए रखना भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कई किसान पौधों के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए गोबर की खाद, जिप्सम और सुरक्षात्मक सिंचाई का भी उपयोग करते हैं। कटाई के बाद, फलियों को सीधे जमीन पर रखने के बजाय साफ तिरपाल पर सुखाने से फंगल बीजाणुओं के संपर्क को रोकने में मदद मिलती है, जिससे संदूषण का खतरा कम हो जाता है। ये सरल लेकिन प्रभावी कदम स्वस्थ फसलों और सुरक्षित भोजन में योगदान करते हैं।

4. कटाई उपरांत प्रबंधन :

सफल फसल के बाद भी, यदि फसलों की उचित देखभाल नहीं की गई तो एफ्लाटॉक्सिन संदूषण हो सकता है। कटाई के बाद के प्रमुख कदम जैसे उचित सुखाने, छंटाई, भंडारण और परिवहन जोखिम को कम करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। जो किसान मूँगफली को साफ तिरपाल पर सुखाते हैं, उन्हें भली भांति बंद करके सील की गई थैलियों में संग्रहीत करते हैं, और बदरंग या क्षतिग्रस्त दानों को हटा देते हैं, वे एफ्लाटॉक्सिन के विकास की संभावना को काफी कम कर सकते हैं।

अतिरिक्त रणनीतियों में भंडारण उपकरणों को साफ करना और कीट-प्रतिरोधी, खाद्य-सुरक्षित पैकेजिंग का उपयोग करना शामिल है। कुछ मामलों में, एफ्लाटॉक्सिन के स्तर को कम करने के लिए एंटिफंगल उपचार या विषहरण विधियों - जैसे हीट प्रोसेसिंग या मिलिंग - का उपयोग किया जाता है। ये प्रथाएं न केवल खाद्य सुरक्षा बढ़ाती हैं बल्कि फसल के बाजार मूल्य में भी वृद्धि करती हैं। जब सही ढंग से लागू किया जाता है, तो कटाई के बाद की देखभाल संदूषण के खिलाफ रक्षा की अंतिम और सबसे महत्वपूर्ण पंक्ति के रूप में कार्य करती है।

5. मूँगफली में एफ्लाटॉक्सिन सहनशीलता के लिए प्रजनन :

आनुवंशिक प्रतिरोध मूँगफली में एफ्लाटॉक्सिन संदूषण के लिए एक स्थायी और दीर्घकालिक समाधान प्रदान करता है। प्राकृतिक रूप से फंगल संक्रमण और विष संचय के प्रति प्रतिरोधी किस्मों को विकसित करके, वैज्ञानिकों का लक्ष्य फसल सुरक्षा को भीतर से मजबूत करना है। हालाँकि, प्रजनन प्रयासों को अक्सर जीनोटाइप-पर्यावरण इंटरैक्शन द्वारा चुनौती दी जाती है, जहां एक किस्म जो एक क्षेत्र में अच्छा प्रदर्शन करती है वह दूसरे में समान प्रदर्शन नहीं कर सकती है।

इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए, प्रजनन कार्यक्रम प्रतिरोधी मूल वंशावली का चयन करने, रोगज़नक़ विविधता को समझने और चयन सटीकता बढ़ाने के लिए जीनोमिक उपकरणों का उपयोग करने पर ध्यान केंद्रित करते हैं। यह पूर्व-प्रजनन कार्य उच्च उपज देने वाली, एफ्लाटॉक्सिन-प्रतिरोधी मूँगफली किस्मों को विकसित करने की नींव बनाता है। किसानों द्वारा अपनाए जाने पर, ये उन्नत किस्में प्रदूषण को कम करने, सुरक्षित फसल सुनिश्चित करने और आजीविका में सुधार करने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण बन जाती हैं।

6. रासायनिक नियंत्रण:

जबकि प्राकृतिक तरीकों को आमतौर पर प्राथमिकता दी जाती है, रासायनिक नियंत्रण भी विशेष रूप से भंडारण के दौरान एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जब नमी और कीट संक्रमण फंगल विकास के लिए आदर्श स्थिति बनाते हैं। बीएचए (ब्यूटाइलेटेड हाइड्रॉक्सीनिसोल) और बीएचटी (ब्यूटाइलेटेड हाइड्रॉक्सीटोल्यूइन) जैसे यौगिकों को भंडारित मूँगफली में फंगल विकास और कीट गतिविधि दोनों को प्रभावी ढंग से कम करने के लिए दिखाया गया है। इसी तरह, एज़ोक्सिस्ट्रोबिन और फ्लुडियोक्सोनिल जैसे कवकनाशी कवक बीजाणु अंकुरण और एफ्लाटॉक्सिन उत्पादन को रोकते हैं।

साइट्रिक एसिड और टार्टरिक एसिड जैसे कार्बनिक अम्लों का उपयोग एफ्लाटॉक्सिन अणुओं को कम हानिकारक रूपों में तोड़ने के लिए किया जाता है। दबाव में सोडियम हाइड्रोसल्फाइट जैसे अधिक उन्नत उपचारों ने फसल को नुकसान पहुंचाए बिना एफ्लाटॉक्सिन के स्तर में महत्वपूर्ण कमी दिखाई है। इलेक्ट्रोलाइज्ड ऑक्सीडाइजिंग वॉटर एक और उभरती हुई तकनीक है, जो मूँगफली की पोषण गुणवत्ता को बनाए रखते हुए

एफ्लाटॉक्सिन बी1 के स्तर को 85% तक कम करने में सक्षम है। जब उचित रूप से लागू किया जाता है, तो ये रासायनिक दृष्टिकोण जैविक और कृषि संबंधी तरीकों के पूरक होते हैं, जो एफ्लाटॉक्सिन संदूषण को प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने के लिए एक व्यापक रणनीति प्रदान करते हैं।

7. शिक्षित किसान: ज्ञान सबसे मजबूत ढाल है

जागरूकता की कमी एफ्लाटॉक्सिन संदूषण को नियंत्रित करने में सबसे बड़ी बाधाओं में से एक बनी हुई है। कई किसान इस बात से अपरिचित हैं कि एफ्लाटॉक्सिन क्या हैं, वे कैसे विकसित होते हैं, या वे फसल की गुणवत्ता और मानव स्वास्थ्य के लिए क्या जोखिम पैदा करते हैं। सरकारों, शोधकर्ताओं, गैर सरकारी संगठनों और किसान समूहों के समन्वित प्रयासों के माध्यम से प्रशिक्षण और शिक्षा किसानों को प्रदूषण को रोकने के लिए सरल, व्यावहारिक तरीकों से सशक्त बना सकती है। सुरक्षित कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देने और जमीनी स्तर से खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए जमीनी स्तर पर जागरूकता बढ़ाना महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष:

एफ्लाटॉक्सिन संदूषण मानव स्वास्थ्य, कृषि व्यापार और खाद्य सुरक्षा के लिए एक मूक लेकिन गंभीर खतरा है। हालाँकि, जैविक नियंत्रण, अच्छी कृषि पद्धतियाँ, उन्नत फसल किस्मों, फसल के बाद की उचित देखभाल, रसायनों के विवेकपूर्ण उपयोग और किसान शिक्षा के संयोजन से जोखिम को काफी कम किया जा सकता है। इस चुनौती से निपटने के लिए सुरक्षित भोजन और सुरक्षित भविष्य सुनिश्चित करने के लिए प्रयोगशाला से लेकर खेत तक और किसानों से लेकर नीति निर्माताओं तक सहयोगात्मक प्रयासों की आवश्यकता है।

Integrated Aflatoxin Management Strategies

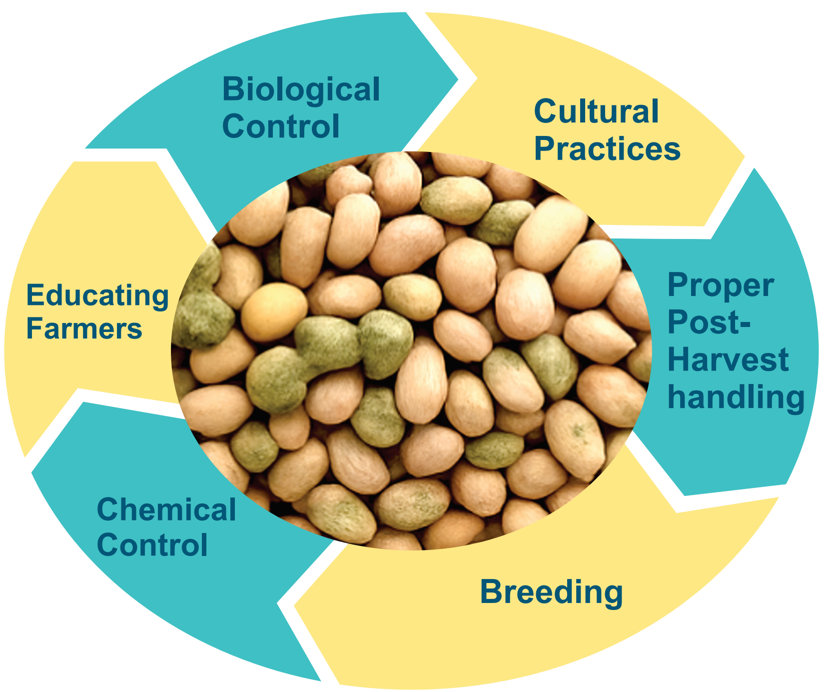

Reference

1. Mdindikasi, Z., Mwamahonje, A., Mpore, F. J., James, A., & Mahinda, A. (2024). Management practices to mitigate aflatoxin contamination in groundnut: a review. Cogent Food & Agriculture, 10(1), 2366383.
2. Guchi, E. (2015). Aflatoxin contamination in groundnut (Arachis hypogaea L.) caused by Aspergillus species in Ethiopia. Journal of Applied & Environmental Microbiology, 3(1), 11–19.

9. मूँगफली की खेती में लागत, लाभप्रदता और मूल्य प्राप्ति में व्यापक असमानता

मंजुनाथ पी. पालेड़, उपासना डी. भोपाला
भाकृअनुप – भारतीय मूँगफली अनुसंधान संस्थान, जूनागढ़

प्रस्तावना

भारत में मूँगफली (Arachis hypogaea) एक महत्वपूर्ण तिलहनी फसल है, जिसका उपयोग मुख्यतः खाद्य तेल उत्पादन, पशु चारे और औद्योगिक उद्देश्यों में होता है। यह फसल विशेषकर अर्ध-शुष्क और वर्षा आधारित क्षेत्रों में उगाई जाती है, और इसकी खेती गुजरात, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, ओडिशा और राजस्थान जैसे राज्यों में बड़े पैमाने पर की जाती है।हालांकि, मूँगफली की खेती की लागत संरचना में राज्यवार अत्यधिक भिन्नता पाई जाती है, जो कृषि संसाधनों की उपलब्धता, जलवायु परिस्थितियों, तकनीकी हस्तक्षेप, श्रम लागत तथा सिंचाई सुविधाओं जैसे अनेक कारकों पर निर्भर करती है। कई राज्यों में किसान अनुशंसित इनपुट्स से अधिक मात्रा में बीज, उर्वरक एवं श्रम का उपयोग कर रहे हैं, जिससे उत्पादन लागत तो बढ़ती है परंतु लाभ में अपेक्षित वृद्धि नहीं होती। इसके अतिरिक्त, केंद्र सरकार द्वारा घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) सभी किसानों के लिए लाभकारी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि वास्तविक बाजार मूल्य और सरकारी खरीद तंत्र की सीमाएं किसानों के शुद्ध लाभ (Net Returns) को प्रभावित करती हैं। ऐसी स्थिति में, मूँगफली की खेती से जुड़े लागत विश्लेषण को समझना न केवल किसान की आय वृद्धि के लिए बल्कि नीतिगत सुधारों के लिए भी अनिवार्य है।यह अध्ययन राज्यवार इनपुट उपयोग, लागत संरचना, और प्राप्त पारिश्रमिक के बीच के संबंधों की पड़ताल करता है, ताकि मूँगफली की खेती को लाभकारी, टिकाऊ एवं क्षेत्र-विशेष के अनुकूल बनाया जा सके।

भारत में राज्यों के बीच मूँगफली की लागत में व्यापक असमानता:

मूँगफली की खेती की अर्थव्यवस्था विभिन्न राज्यों में काफी भिन्न होती है। अगर हम वर्ष 2021-22 की बात करें, तो मूँगफली की खेती की लागत में राज्यों के बीच स्पष्ट अंतर देखा गया**है**, जो उत्तर प्रदेश में ₹48,027 प्रति हेक्टेयर से लेकर पश्चिम बंगाल में ₹1,42,380 प्रति हेक्टेयर तक है। इन अंतर का कारण इनपुट्स का उपयोग, श्रम बाज़ार की स्थिति, यंत्रीकरण का स्तर, भू-अधिकार प्रणाली तथा कृषि-जलवायु परिस्थितियों में विविधता है। तेलंगाना, महाराष्ट्र तथा पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में कुल खेती लागत अधिक रही, जिसका प्रमुख कारण रासायनिक उर्वरकों का अनुचित उपयोग, भूमि किराया अधिक होना तथा यंत्रीकरण का स्तर कम होना है। जबकि उत्तर प्रदेश, ओडिशा तथा आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों में कुल लागत कम रही, यद्यपि कई बार यह कम लाभप्रदता या दक्षता की कीमत पर हुआ।

परिवर्ती लागत (Variable Costs) जो कुल लागत का लगभग 70% से 83% हिस्सा बनाती हैं जिस पर करीबी दृष्टि डालने से, यह स्पष्ट होता है कि मानव श्रम (Human Labour) सबसे प्रमुख लागत घटक है। राजस्थान में यह हिस्सा जहाँ 18% जितना कम है, वहीं ओडिशा में 48.89% और पश्चिम बंगाल में 47.92% जितना अधिक है। मानव श्रम पर यह अत्यधिक निर्भरता विशेषकर पूर्वी और दक्षिणी राज्यों में यंत्रीकरण (Mechanization) की सीमित उपलब्धता या अपनाव को दर्शाती है। उदाहरण के लिए, ओडिशा, जहाँ कुल खेती लागत ₹ 63,325 प्रति हेक्टेयर है, वहाँ मानव श्रम की लागत ₹ 30,957 प्रति हेक्टेयर है, जो कुल परिवर्ती लागत का एक बड़ा हिस्सा है। वहीं मशीन श्रम पर ओडिशा मात्र 4.53% खर्च करता है, जो इस पूरे डाटा सेट में सबसे कम में से एक है। यह असंतुलन दर्शाता है कि कम कुल लागत का अर्थ यह नहीं है कि लागत संरचना कुशल है या लाभप्रदता अधिक है। इसके विपरीत, राजस्थान कुल लागत का 17.58% मशीन श्रम और केवल 18.45% मानव श्रम पर खर्च करता है, जो अधिक कुशल श्रम प्रतिस्थापन (labour substitution) को दर्शाता है।

बीज लागत सभी राज्यों में कुल खर्च का दूसरा सबसे बड़ा घटक है। आंध्र प्रदेश में बीज लागत कुल लागत का लगभग 20% है, जो सभी राज्यों में सबसे अधिक है। वहीं तेलंगाना और राजस्थान में बीज की कुल लागत भी अधिक है (₹24,155/हेक्टेयर और ₹17.848/हेक्टेयर क्रमशः), जो यह संकेत देती है कि बीज की कीमतें अधिक हैं और बीज की मात्रा भी अधिक प्रयोग की जा रही है। इसके विपरीत, महाराष्ट्र केवल 11.12% लागत बीज पर खर्च करता है, जो संभवतः स्थानीय बीज उपलब्धता या पुनः प्रयुक्त बीज के उपयोग के कारण है।

हालाँकि अधिकांश राज्य परिवर्ती लागत पर सकारात्मक शुद्ध लाभ दिखाते हैं, लेकिन जब स्थायी लागत, विशेष रूप से भूमि किराया, को शामिल किया जाता है, तो स्थिति बदल जाती है। उदाहरण के लिए, तेलंगाना में परिवर्ती लागत पर शुद्ध लाभ ₹34.661/हेक्टेयर है, लेकिन भूमि किराया कुल लागत का 28.25% होने के कारण कुल लागत पर –-

₹4.682/हेक्टेयर का घाटा हो जाता है। इसी प्रकार, ओडिशा में परिवर्ती लागत पर ₹1.367/हेक्टेयर का मामूली लाभ स्थायी लागत जोड़ने पर -₹12.202/हेक्टेयर के घाटे में बदल जाता है, जबकि वहाँ भूमि किराया का हिस्सा केवल 20.18% है। आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में भी स्थायी लागत लाभ को समाप्त कर देती है।

तालिका 1ए: राज्यवार मूँगफली उत्पादन की अर्थव्यवस्था (2021-22) (₹ प्रति हेक्टेयर में)

विवरण	आंध्रप्रदेश	%	गुजरात	%	कर्नाटक	%	महाराष्ट्र	%	ओड़िशा	%
क. परिवर्ती लागत	64105	76.82	70949	77.42	55151	77.48	96819	83.38	49757	78.57
मानव श्रम	25800	30.92	24528	26.76	24547	34.49	49519	42.65	30957	48.89
पशु श्रम	2391	2.87	1621	1.77	4578	6.43	2145	1.85	2833	4.47
मशीन श्रम	7748	9.29	14016	15.29	9006	12.65	15996	13.78	2871	4.53
बीज	16728	20.05	16110	17.58	10999	15.45	12909	11.12	9766	15.42
गोबर खाद एवं उर्वरक	7028	8.42	7300	7.97	3285	4.61	8661	7.46	2300	3.63
कीटनाशक	1896	2.27	4177	4.56	368	0.52	297	0.26	0	0.00
अन्य	2514	3.01	3198	3.49	2367	3.33	7292	6.28	1030	1.63
ख. स्थायी लागत	19339	23.18	20698	22.58	16030	22.52	19299	16.62	13568	21.43
भूमि किराया	14776	17.71	16153	17.63	14923	20.96	14404	12.40	12781	20.18
अन्य	4563	5.47	4544	4.96	1107	1.56	4895	4.22	788	1.24
कुल लागत (क+ख)	83444	100.00	91647	100.00	71181	100.00	116118	100.00	63325	100.00
सकल लाभ	54601		101294		73265		86405		51123	
परिवर्ती लागत पर शुद्ध लाभ	-9504		30345		18114		-0414		1367	
कुल लागत पर शुद्ध लाभ	-28843		9647		2084		-29713		-12202	
अनुमानित उत्पादकता (क्विंटल/ हेक्टेयर)	9.76		16.50		12.23		11.74		7.81	

स्रोत: आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय, भारत सरकार

घाटा झेल रहे राज्यों में खेती की उच्च लागत का मुख्य कारण अत्यधिक मानव श्रम (कम मशीनीकरण) और बीज की अधिक मात्रा है। उदाहरणस्वरूप, पश्चिम बंगाल और महाराष्ट्र में मानव श्रम की मात्रा क्रमशः 173 और 145 मानव-दिवस/हेक्टेयर है, जो कुल लागत का 42% और 47% योगदान करते हैं। इसी प्रकार, आंध्र प्रदेश और तेलंगाना में बीज की खपत क्रमशः 216 किग्रा/हेक्टेयर और 153 किग्रा/हेक्टेयर है, जो अनुशंसित मात्रा से कहीं अधिक है और

इससे लागत तो बढ़ती है लेकिन उपज में अनुपातिक वृद्धि नहीं होती। ये राज्य अधिक मात्रा में उर्वरक भी प्रयोग करते हैं (147 और 153 किग्रा पोषक तत्व/हेक्टेयर), जबकि वे मुख्यतः वर्षा पर आधारित (सूखा क्षेत्र) खेती करते हैं जहाँ अधिक उर्वरक उपयोग का लाभ सीमित होता है। इसके अलावा, महाराष्ट्र में बीज की कीमत ₹144/किग्रा और पश्चिम बंगाल में ₹122/किग्रा है, जो लागत को और बढ़ा देती है।

दूसरी ओर, राजस्थान में लागत संरचना संतुलित है और कुल लागत पर सर्वाधिक शुद्ध लाभ (₹ 56,551/हेक्टेयर) प्राप्त किया गया है, जबकि वहाँ की कुल लागत अपेक्षाकृत अधिक है। राजस्थान परिवर्ती लागतों का कुशलतापूर्वक उपयोग करता है, श्रम और मशीनीकरण में संतुलन रखता है तथा स्थायी लागत का बेहतर प्रबंधन करता है, जिससे लाभप्रदता बनी रहती है।

तालिका 1बी: राज्यवार मूँगफली उत्पादन की अर्थव्यवस्था (2021-22) (₹ प्रति हेक्टेयर में)

विवरण	राजस्थान	%	तमिलनाडु	%	तेलंगाना	%	उत्तर प्रदेश	%	पश्चिम बंगाल	%
क. परिवर्ती लागत	66625	73.30	67412	76.16	94879	70.69	35060	73.00	102495	71.99
मानव श्रम	16769	18.45	31887	36.02	39724	29.60	16512	34.38	68226	47.92
पशु श्रम	196	0.22	511	0.58	3320	2.47	0	0.00	1634	1.15
मशीन श्रम	15979	17.58	8863	10.01	13495	10.05	7912	16.47	3642	2.56
बीज	17848	19.64	14368	16.23	24155	18.00	7624	15.88	17154	12.05
गोबर खाद एवं उर्वरक	2602	2.86	6543	7.39	6700	4.99	1646	3.43	3872	2.72
कीटनाशक	1414	1.56	813	0.92	3971	2.96	156	0.33	3146	2.21
अन्य	11817	13.00	4427	5.00	3513	2.62	1209	2.52	4822	3.39
ख. स्थायी लागत	24263	26.70	21103	23.84	39343	29.31	12967	27.00	39885	28.01
भूमि किराया	2004	22.05	15647	17.68	37912	28.25	11155	23.23	38160	26.80
अन्य	4218	4.64	5456	6.16	1431	1.07	1813	3.77	1725	1.21
कुल लागत (क+ख)	90887	100.00	88514	100.00	134221	100.00	48027	100.00	142380	100.00
सकल लाभ	147438		89722		129539		50330		153087	
परिवर्ती लागत पर शुद्ध लाभ	-80813		22310		34661		15271		50592	
कुल लागत पर शुद्ध लाभ	56551		1208		-4682		2303		10707	
अनुमानित उत्पादकता (क्विंटल/हेक्टेयर)	25.62		14.76		17.84		10.44		32.59	

स्रोत: आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय, भारत सरकार

सारांश रूप में यह विश्लेषण दर्शाता है कि कुल खेती लागत कम होना आवश्यक रूप से अधिक लाभप्रदता की गारंटी नहीं देता, विशेषकर जब श्रम लागत अत्यधिक हो या भूमि किराया अधिक हो। इनपुट मिश्रण की दक्षता, विशेष रूप से श्रम, मशीनीकरण और बीज लागत के बीच संतुलन, शुद्ध लाभ निर्धारित करने में कहीं अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नीति-निर्माताओं को क्षेत्र-विशिष्ट रणनीतियों को प्राथमिकता देनी चाहिए जो श्रम -प्रधान क्षेत्रों में मशीनीकरण को प्रोत्साहित करें, इनपुट मूल्य निर्धारण को नियंत्रित करें, और भूमि स्वामित्व से जुड़ी बाधाओं का समाधान करें, जिससे भारत के विविध कृषि परिदृश्यों में खेत - स्तरीय लाभप्रदता में सुधार हो सके।

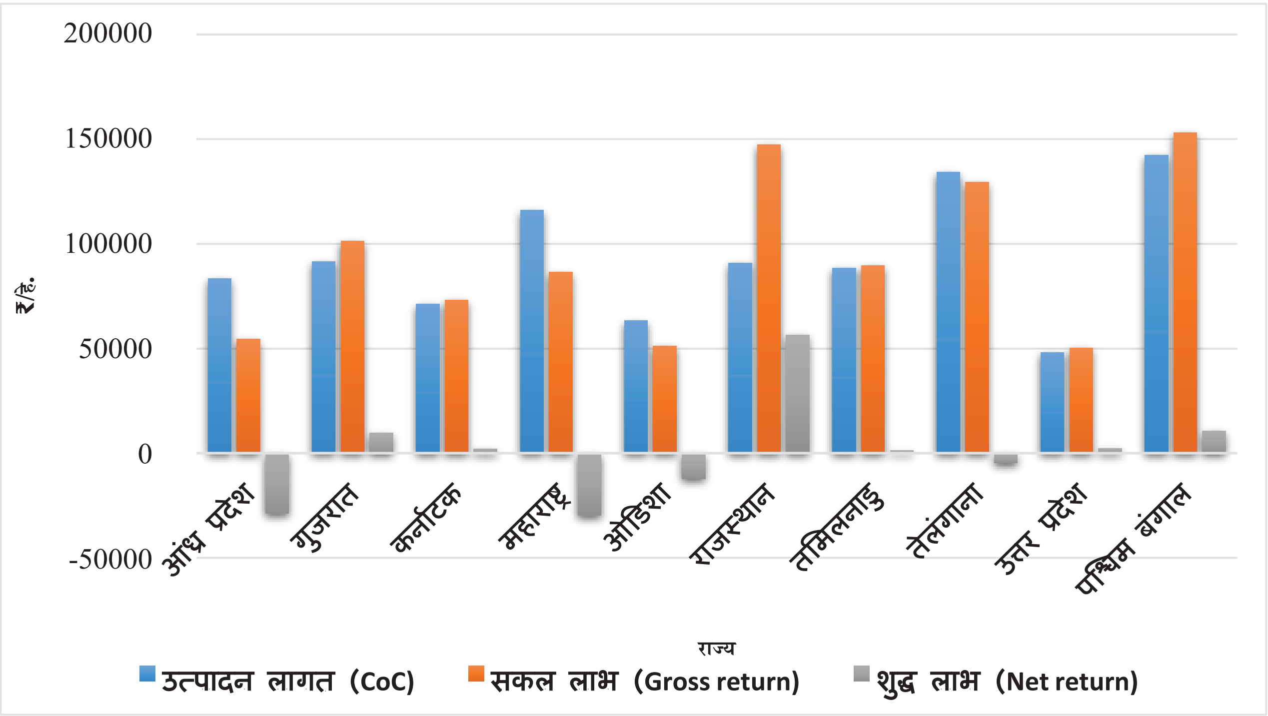

मूँगफली उत्पादक प्रमुख राज्यों में खेती की लागत, सकल लाभ और शुद्ध लाभ

अंततः, यह विश्लेषण इस बात को रेखांकित करता है कि मूँगफली की लाभप्रदता कुल खर्च से अधिक इस बात पर निर्भर करती है कि इनपुट्स का उपयोग किस प्रकार किया गया है। इनपुट उपयोग में सुधार, मशीनीकरण तथा कृषकों के प्रशिक्षण में रणनीतिक हस्तक्षेप, भारत के विभिन्न agro-climatic क्षेत्रों में मूँगफली की खेती की आर्थिक व्यवहार्यता को उल्लेखनीय रूप से बढ़ा सकते हैं।

मूँगफली की खेती में इनपुट उपयोग का पैटर्न:

भारत के प्रमुख राज्यों में मूँगफली की खेती में इनपुट उपयोग (Table 2) का विश्लेषण यह दर्शाता है कि अनुशंसित कृषि वैज्ञानिक विधियों, विशेष रूप से बीज और उर्वरक उपयोग में, महत्वपूर्ण विचलन देखने को मिलता है। यह विचलन सीधे तौर पर उत्पादन लागत को बढ़ाता है और लाभप्रदता को घटाता है।

तालिका 2: राज्यवार मूँगफली में इनपुट उपयोग पैटर्न (2021-22)

इनपुट्स	आंध्र प्रदेश	गुजरात	कर्नाटक	महाराष्ट्र	ओडिशा	राजस्थान	तमिलनाडु	तेलंगाना	उत्तर प्रदेश	पश्चिम बंगाल
बीज (किलोग्राम)	153	140	105	90	130	140	123	216	84	142
उर्वरक (किग्रा पोषक तत्व)	156	100	113	87	46	58	87	147	48	61
गोबर खाद (क्विंटल)	2	30	1	20	1	16	14	0	0	0
मानव श्रम (कार्यदिवस)	49	73	71	145	93	35	68	60	45	173
पशु श्रम (जोड़ी-दिन)	1.5	1.1	2.9	1	8	0.25	0.25	1.9	0	1

स्रोत: आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय, भारत सरकार

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) के अनुसार मूँगफली की बोल्ड किस्मों के लिए अनुशंसित बीज मात्रा 100 से 125 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर तथा छोटे बीज वाली किस्मों के लिए 80 से 100 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है, जब सामान्य दूरी पर बुवाई की जाती है। लेकिन वास्तविक उपयोग इससे कहीं अधिक पाया गया है, जैसे तेलंगाना में 216 किग्रा/हेक्टेयर, आंध्र प्रदेश में 153 किग्रा/हेक्टेयर, गुजरात में 140 किग्रा/ हेक्टेयर और पश्चिम बंगाल में 142 किग्रा/हेक्टेयर। ये आँकड़े अनुशंसित सीमा से 40 प्रतिशत से लेकर 100 प्रतिशत से भी अधिक हैं। इससे बीज लागत में अनावश्यक वृद्धि होती है, जबकि इससे उत्पादकता में कोई समानुपाती लाभ नहीं मिलता और अत्यधिक पौधा घनत्व के कारण फसल पर नकारात्मक असर भी पड़ सकता है।

उर्वरक उपयोग में भी राज्यों के बीच काफी भिन्नता पाई गई है। आंध्र प्रदेश (156 किग्रा/हेक्टेयर) और तेलंगाना (147 किग्रा/हेक्टेयर) में सबसे अधिक उर्वरक उपयोग दर्ज किया गया है, इसके बाद कर्नाटक (113 किग्रा/हेक्टेयर) आता है। इसके विपरीत, ओडिशा (46 किग्रा/हेक्टेयर), उत्तर प्रदेश (48 किग्रा/हेक्टेयर) और राजस्थान (58 किग्रा/हेक्टेयर) में उर्वरक की खपत काफी कम है। तमिलनाडु (87 किग्रा/हेक्टेयर) और पश्चिम बंगाल (61 किग्रा/हेक्टेयर) मध्यम श्रेणी में आते हैं। यह विविधता बताती है कि उर्वरक प्रबंधन में क्षेत्रीय स्तर पर बहुत अंतर है, जो उत्पादन लागत और फसल की गुणवत्ता को प्रभावित करता है।

मानव श्रम उपयोग भी उत्पादन लागत को प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण घटक है। श्रम की आवश्यकता राज्यों के अनुसार बहुत भिन्न है। महाराष्ट्र में 1162 मानव-घंटे प्रति हेक्टेयर और पश्चिम बंगाल में 1384 मानव-घंटे प्रति हेक्टेयर की माँग देखी गई है, जिनमें से अधिकांश श्रम पारिवारिक होता है। इसके विपरीत, राजस्थान (283 मानव-घंटे/हेक्टेयर) और तमिलनाडु (547 मानव-घंटे/हेक्टेयर) में श्रम की आवश्यकता कम है। मजदूरी दरें ओडिशा में 41 रुपये प्रति घंटा से लेकर तेलंगाना में 83 रुपये प्रति घंटा तक पाई गई हैं। इसका अर्थ है कि जहाँ श्रम की माँग और मजदूरी दोनों अधिक हैं, जैसे महाराष्ट्र और तेलंगाना, वहाँ मूँगफली उत्पादन की लागत बहुत अधिक हो जाती है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इनपुट उपयोग का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से तर्कसंगत प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम, बेहतर कृषि प्रसार सेवाएँ और सटीक सिफारिशों तक किसानों की पहुँच बढ़ाना जरूरी है। विशेष रूप से बीज और उर्वरक के उचित प्रबंधन के साथ-साथ श्रम-बचत मशीनीकरण को बढ़ावा देने से लागत में कमी लाई जा सकती है और वर्तमान न्यूनतम समर्थन मूल्य व्यवस्था के अंतर्गत शुद्ध लाभ में सुधार किया जा सकता है। इसके अलावा, कृषि वैज्ञानिक मानकों का पालन संसाधनों की दक्षता को बढ़ाएगा और मूँगफली की खेती को टिकाऊ बनाएगा।

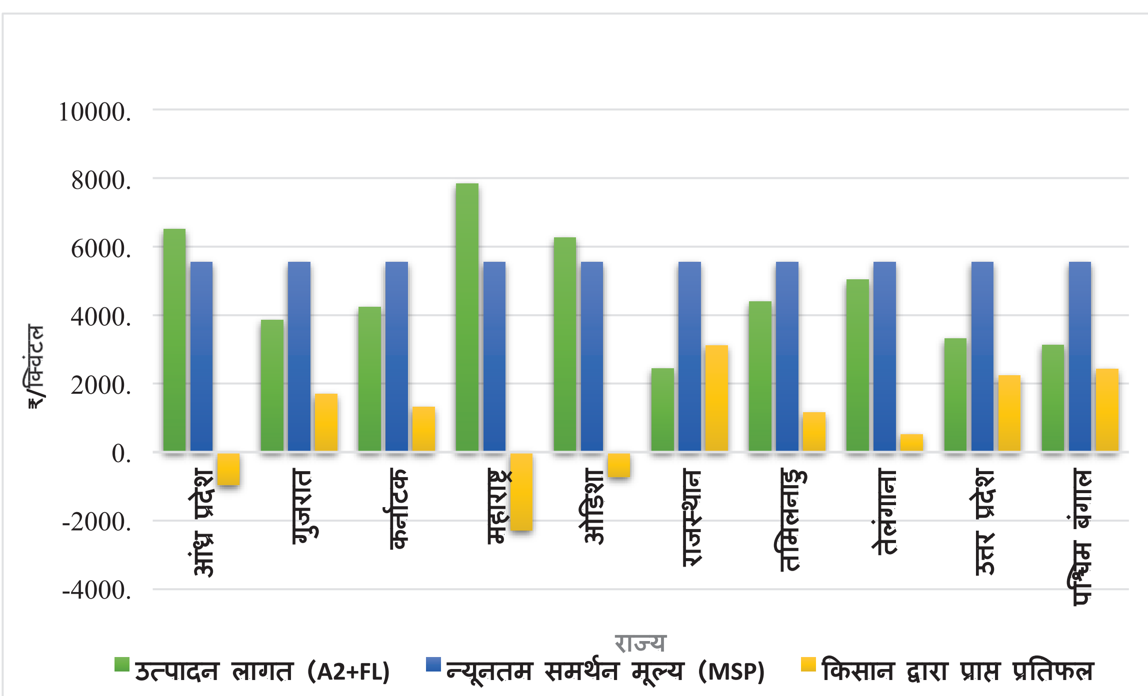

मूँगफली में उत्पादन लागत (A2+FL), न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP), और किसान द्वारा प्राप्त पारिश्रमिक

मूँगफली की खेती की लागत (Cost of Cultivation), न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) और किसानों को प्राप्त पारिश्रमिक (Remuneration):

न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) एक ऐसी नीतिगत व्यवस्था है जिसे किसानों को बाजार मूल्य में उतार-चढ़ाव से सुरक्षा प्रदान करने और खेती की लागत की भरपाई करके न्यूनतम आय सुनिश्चित करने के उद्देश्य से बनाया गया है। लेकिन राज्यवार मूँगफली उत्पादन के आँकड़ों का विश्लेषण दर्शाता है कि एमएसपी अपने उद्देश्य को सभी राज्यों में समान रूप से पूरा नहीं कर पा रहा है।

उदाहरणस्वरूप, महाराष्ट्र में उत्पादन लागत (ए2+ एफएल) प्रति क्विंटल 7835 रुपये से अधिक है, जबकि एमएसपी लगभग 5550 रुपये है। इससे किसानों को प्रति क्विंटल 2285 रुपये से अधिक का घाटा होता है, जो उन्हें सुरक्षा प्रदान करने के बजाय आर्थिक संकट की ओर धकेलता है। ओडिशा में भी ऐसी ही स्थिति देखी गई, जहाँ किसानों को प्रति क्विंटल लगभग 715 रुपये का घाटा हो रहा है। इन घाटों का मुख्य कारण इनपुट लागत (बीज, उर्वरक, श्रम) का अधिक होना और वास्तविक उत्पादन खर्च के साथ एमएसपी का तालमेल न होना है।

इसके विपरीत, राजस्थान और तमिलनाडु जैसे राज्यों में एमएसपी किसानों के लिए अपेक्षाकृत लाभदायक साबित हो रही है, जहाँ लाभ क्रमशः 3112 रुपये और 1151 रुपये प्रति क्विंटल है। इसका कारण है इन राज्यों में उत्पादन लागत का कम होना, सिंचाई सुविधा की बेहतर उपलब्धता और कृषि समर्थन अवसंरचना तक बेहतर पहुँच। गुजरात, कर्नाटक और तेलंगाना जैसे राज्यों में लाभ बहुत ही मामूली है, जो इनपुट लागत में बढ़ोतरी या बाजार मूल्य में गिरावट जैसे झटकों को झेलने के लिए अपर्याप्त है।

ये निष्कर्ष स्पष्ट करते हैं कि भले ही एमएसपी एक जोखिम-नियंत्रण उपाय के रूप में संभावनाएं रखता हो, लेकिन क्षेत्रीय उत्पादन लागत में असमानता और लागत पुनरीक्षण की नियमितता की कमी के कारण इसकी प्रभावशीलता कमजोर हो जाती है। अतः आवश्यकता है कि एमएसपी व्यवस्था को राज्य-विशिष्ट, गतिशील नीति के रूप में विकसित किया जाए, जिसमें बेहतर सरकारी खरीद व्यवस्था, सटीक लागत आकलन प्रणाली और नियमित समीक्षा तंत्र शामिल हो, ताकि यह व्यवस्था किसानों को वास्तव में आय-सुरक्षा प्रदान कर सके।

निष्कर्ष :

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारत में मूँगफली की खेती की लागत, लाभप्रदता और मूल्य प्राप्ति में राज्यों के बीच व्यापक असमानता पाई जाती है, जो इनपुट उपयोग की मात्रा, श्रम लागत, यंत्रीकरण के स्तर और भूमि किराया जैसी विविध कारकों से प्रभावित होती है। राजस्थान जैसे राज्य जहां मशीनीकरण और श्रम उपयोग में संतुलन है, वहां लाभप्रदता अधिक है, जबकि महाराष्ट्र, ओडिशा और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में अत्यधिक श्रम व बीज उपयोग से लागत तो बढ़ती है, पर अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता। अन्य राज्यों में जहाँ उच्च लागत के कारण लाभप्रदता कम है, वहाँ मशीनीकरण को प्रोत्साहित कर मानव श्रम और यांत्रिक शक्ति के बीच संतुलन स्थापित करना भी आवश्यक है, जिससे लागत में कमी आएगी और खेती की समग्र दक्षता एवं लाभप्रदता में सुधार होगा। बीज और उर्वरकों का अनुशंसित मात्रा से अधिक उपयोग लागत को और बढ़ाता है, वहीं न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) भी कई राज्यों में किसानों के लिए लाभकारी सिद्ध नहीं हो रहा, खासकर जहां उत्पादन लागत अधिक है। ऐसी स्थिति में, राज्यवार लागत भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए **राज्य-विशिष्ट न्यूनतम समर्थन मूल्य (Statewise MSP)** की अनुशंसा की जा सकती है, ताकि किसानों को उनकी वास्तविक लागत के अनुरूप पारिश्रमिक मिल सके। इ सके साथ ही, बीज और उर्वरकों का उपयोग कृषि वैज्ञानिकों द्वारा अनुशंसित मात्रा के अनुसार किया जाना चाहिए; अनुशंसित मात्रा का उपयोग करने से उत्पादन लागत को नियंत्रित किया जा सकता है अतः क्षेत्र-विशिष्ट नीतिगत हस्तक्षेप, यंत्रीकरण का विस्तार, इनपुट उपयोग का वैज्ञानिक प्रबंधन, और एमएसपी की समीक्षा एवं सरकारी खरीद प्रणाली का सुदृढ़ीकरण मूँगफली की खेती को लाभकारी एवं टिकाऊ बनाने के लिए अनिवार्य हैं।

10. शहद उत्पादन और मधुमक्खी पालन: टिकाऊ कृषि और पोषण का आधार

उपासना डी. भोपाला, जयश्री लाखणोत्रा, आर्मी आर. पटोलिया, मंजुनाथ पी. पालेड

भाकृअनुप – भारतीय मूँगफली अनुसंधान संस्थान, जूनागढ़

शहद (मधु) भारतीय संस्कृति में केवल एक भोजन नहीं, बल्कि एक **अमृत** है **- पंचामृत** का एक पवित्र घटक, जो जीवन, स्वास्थ्य और शुद्धता का प्रतीक है। धार्मिक अनुष्ठानों में जहाँ यह देवताओं को अर्पित किया जाता है, वहीं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह एंटीऑक्सीडेंट्स, एंजाइम्स और पोषक तत्वों का खजाना है। शहद का उत्पादन केवल मधुमक्खियों की मेहनत से नहीं, बल्कि उनके द्वारा की जाने वाली परागण प्रक्रिया के कारण कृषि और पारिस्थितिकी तंत्र को भी जीवन मिलता है। आज जब भारत विश्व के प्रमुख शहद उत्पादक और निर्यातक देशों में से एक बन चुका है, तब यह आवश्यक हो जाता है कि हम इस पारंपरिक अमृत के आधुनिक महत्व को समझें – शहद, मंदिरों से मंडियों तक।

भारत में शहद उत्पादन की वर्तमान स्थिति :

पिछले एक दशक में भारत में शहद उत्पादन में निरंतर वृद्धि देखने को मिली है। वर्ष 2015-15 में देश का कुल शहद उत्पादन 80.5 हज़ार मीट्रिक टन था। इसके बाद यह आंकड़ा हर वर्ष बढ़ता गया और 2018-19 तक यह 120 हज़ार मीट्रिक टन तक पहुँच गया। यह वृद्धि का सिलसिला आगे भी जारी रहा, और वर्ष 2022-23 में शहद उत्पादन 142 हज़ार मीट्रिक टन तक पहुँच गया। हाल ही में, 2023-24 में भारत का शहद उत्पादन 146.3 हज़ार मीट्रिक टन दर्ज किया गया। इस दस वर्ष की अवधि में शहद उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर (CAGR) 6.87% रही, जो यह दर्शाती है कि भारत में मधुमक्खी पालन (एपीकल्चर) कृषि और ग्रामीण आजीविका का एक अहम और तेजी से उभरता हुआ क्षेत्र बनता जा रहा है।

वर्ष	शहद उत्पादन (हज़ार मी. टन)
2014–15	80.5
2015–16	88
2016–17	94.5
2017–18	105
2018–19	120
2019–20	120
2020-21	125
2021–22	133.2
2022–23	142
2023-24	146.3
वार्षिक वृद्धि दर	**6.87%**

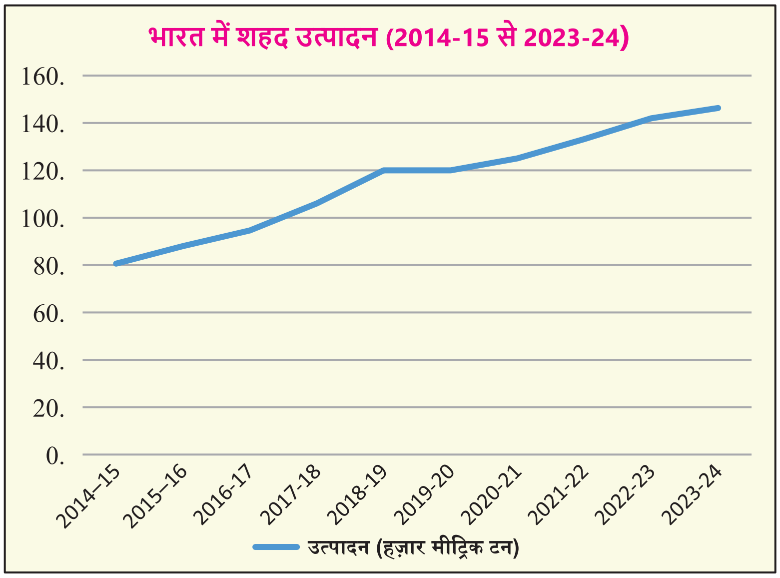

भारत में शहद उत्पादन मुख्यतः कुछ प्रमुख राज्यों तक केंद्रित है, जिनमें उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, पंजाब, बिहार और राजस्थान शामिल हैं। इन पाँच प्रमुख राज्यों ने ही कुल उत्पादन का लगभग 69% योगदान दिया (चित्र 01)। इनमें उत्तर प्रदेश शीर्ष स्थान पर रहा, जहाँ 25.03 हज़ार मीट्रिक टन शहद का उत्पादन हुआ (17%)। इसके बाद पश्चिम बंगाल में 23.69 हज़ार मीट्रिक टन (16%), पंजाब में 20.60 हज़ार मीट्रिक टन (14%), बिहार में 18.03 हज़ार मीट्रिक टन (13%) और राजस्थान में 13.39 हज़ार मीट्रिक टन (9%) शहद का उत्पादन दर्ज किया गया। ये राज्य भारत के तथाकथित "हनी बेल्ट" का हिस्सा हैं, जहाँ मधुमक्खी पालन के लिए उपयुक्त जलवायु, पुष्प संसाधन और किसान जागरूकता उपलब्ध है।

इसके अतिरिक्त, कुछ अन्य राज्य भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, जो भले ही व्यक्तिगत रूप से छोटे आँकड़े प्रस्तुत करते हैं, लेकिन सामूहिक रूप से राष्ट्रीय उत्पादन में उल्लेखनीय योगदान देते हैं। इनमें हिमाचल प्रदेश (6.59 हज़ार मीट्रिक टन; 5%), हरियाणा (5.77 हज़ार मीट्रिक टन; 4%), उत्तराखंड (3.32 हज़ार मीट्रिक टन; 2%), जम्मू एवं कश्मीर (3.14 हज़ार मीट्रिक टन; 2%) और मध्य प्रदेश (2.83 हज़ार मीट्रिक टन; 2%) प्रमुख हैं। इन राज्यों ने मिलकर कुल उत्पादन का लगभग 15% हिस्सा प्रदान किया (चित्र: 01)।

यह आँकड़ा न केवल भारत में शहद उत्पादन की **क्षेत्रीय एकाग्रता** को दर्शाता है, बल्कि यह भी संकेत देता है कि अन्य राज्यों में मधुमक्खी पालन की **अपार संभावनाएँ** मौजूद हैं। यदि उचित प्रशिक्षण, समर्थन और विपणन तंत्र उपलब्ध कराया जाए, तो यह क्षेत्र न केवल **ग्रामीण आजीविका** का एक मजबूत स्रोत बन सकता है, बल्कि **पर्यावरणीय संतुलन और परागण सेवाओं** में भी अहम भूमिका निभा सकता है।

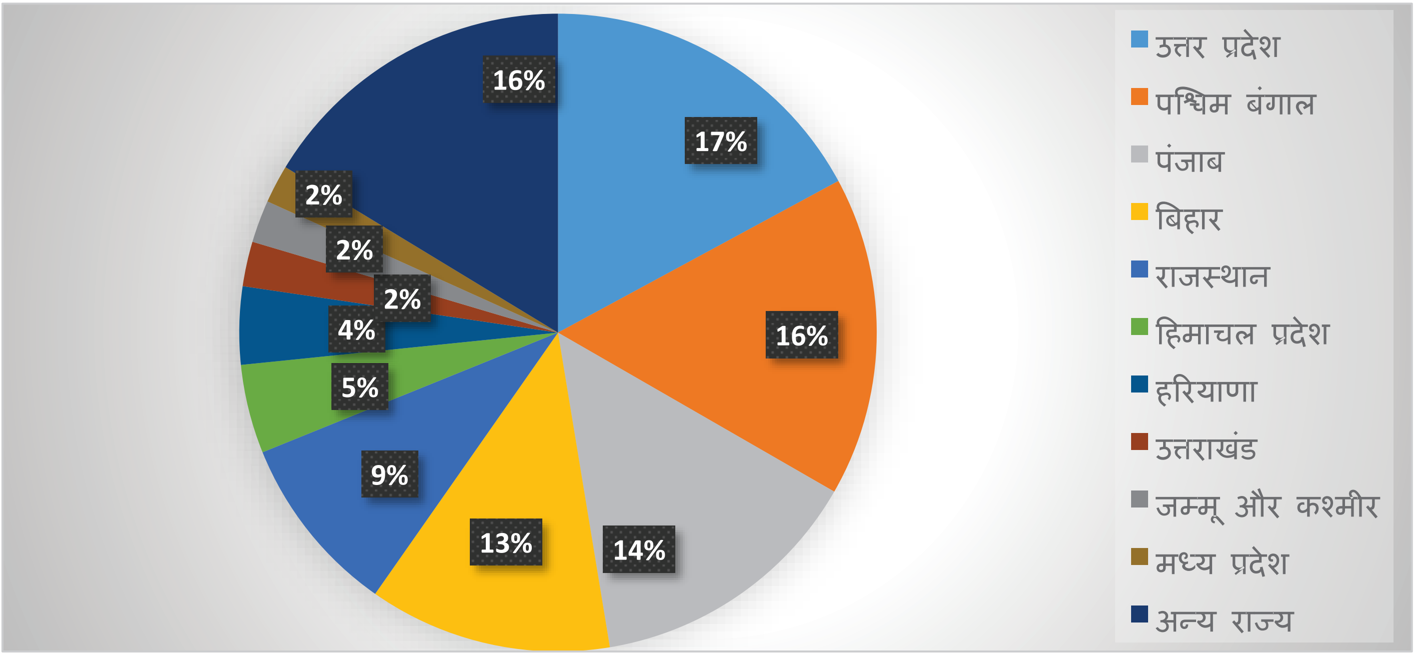

भारत में राज्यवार शहद उत्पादन (2023-24)

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, वर्ष 2023-24 में भारत में शहद का कुल उत्पादन लगभग 1.46 लाख मीट्रिक टन (146.26 हज़ार मीट्रिक टन) रहा, जिससे भारत वैश्विक स्तर पर शहद के प्रमुख उत्पादक देशों में अपनी मजबूत उपस्थिति बनाए रखने में सफल रहा। इसी अवधि में लगभग 1.08 लाख मीट्रिक टन शहद का निर्यात किया गया, जिसकी कुल अनुमानित मूल्य लगभग 177.5 मिलियन अमेरिकी डॉलर आँकी गई। भारतीय शहद की निर्यात गंतव्यों में प्रमुख रूप से अमेरिका, संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब, कतर और लीबिया जैसे देश शामिल हैं, जो यह दर्शाते हैं कि भारत का शहद गुणवत्ता, विविधता और विश्वसनीयता के कारण अंतरराष्ट्रीय बाजार में एक विशिष्ट स्थान रखता है।

हालाँकि उत्पादन और निर्यात के ये आँकड़े प्रभावशाली हैं, फिर भी घरेलू स्तर पर प्रति व्यक्ति शहद की खपत अपेक्षाकृत बहुत कम बनी हुई है। वर्ष 2023-24 में भारत में प्रति व्यक्ति शहद की वार्षिक खपत औसतन मात्र 10 ग्राम रही, जो वैश्विक औसत की तुलना में अत्यंत न्यून है। कोविड-19 महामारी के दौरान यह खपत अस्थायी रूप से बढ़कर 20 ग्राम तक पहुँच गई थी, परन्तु अब पुनः घटकर अपने पूर्व स्तर पर स्थिर हो चुकी है। इसके विपरीत, वैश्विक स्तर पर प्रति व्यक्ति औसत खपत लगभग 250-300 ग्राम है, जबकि अमेरिका और जर्मनी जैसे विकसित देशों में यह आँकड़ा 2 से 4 किलोग्राम प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष तक पहुँच जाता है।

भारत जैसे देश में, जहाँ आयुर्वेदिक परंपराओं में शहद को 'अमृततुल्य' माना गया है, वहाँ इसकी इतनी कम खपत एक चिंताजनक संकेत है। यदि जनसामान्य को शहद के स्वास्थ्य लाभों के प्रति जागरूक किया जाए और शुद्ध शहद की सहज उपलब्धता सुनिश्चित की जाए, तो इसका दैनिक उपयोग बढ़ाया जा सकता है। केवल प्रति व्यक्ति खपत में मामूली वृद्धि (जैसे 20-30 ग्राम प्रति वर्ष) भी देश में घरेलू माँग में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकती है, जिससे न केवल किसानों और मधुमक्खी पालकों की आय में सुधार होगा, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं पोषण सुरक्षा को भी सशक्त बनाया जा सकेगा।

शहद और मानव स्वास्थ्य:

आयुर्वेद के दृष्टिकोण से शहद एक अमृततुल्य औषधि है। यह शरीर में रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाने वाले एंटीऑक्सिडेंट्स का प्रमुख स्रोत है। इसके सेवन से शरीर में ऊर्जा और स्फूर्ति बनी रहती है। शहद पाचन तंत्र के साथ ही श्वसन तंत्र को भी लाभ पहुँचाता है और शरीर में होने वाली जलन या गर्मी को शांत करता है। यह हृदय रोगों से लेकर कैंसर जैसी बीमारियों से भी सुरक्षा प्रदान करने की क्षमता रखता है।

शहद में पाए जाने वाले तत्व बैक्टीरिया और वायरस से लड़ने में मददगार होते हैं, जिससे यह शरीर को बीमारियों से दूर रखने में सहायक बनता है। शहद शरीर को पोषण देने के साथ-साथ विटामिन्स और खनिज तत्वों की कमी को भी पूरा करता है। इन्हीं गुणों के कारण आजकल शहद की घरेलू उपचारों में मांग तेजी से बढ़ रही है।

वर्तमान समय में लोगों का रुझान फिर से प्राकृतिक और आयुर्वेदिक उपायों की ओर बढ़ रहा है, जिसमें शहद का विशेष स्थान बनता जा रहा है। शुद्ध शहद का प्रयोग अब केवल औषधीय उपयोग तक सीमित नहीं है, बल्कि यह दैनिक आहार, त्वचा की देखभाल, बालों की देखभाल और घरेलू उपचारों में भी बड़े पैमाने पर अपनाया जा रहा है। कोरोना महामारी के समय शहद की मांग में जो बढ़ोतरी देखी गई, वह इस बात का प्रमाण है कि अब लोग अपनी प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने और रसायन-मुक्त जीवनशैली अपनाने को लेकर अधिक सजग हो चुके हैं। इस बदलते दृष्टिकोण के कारण शहद अब सिर्फ एक पारंपरिक मिठास नहीं,बल्कि एक समग्र स्वास्थ्यवर्धक तत्व के रूप में लोकप्रिय हो रहा है।

कोष्ठक-1: मध (शहद) में पाए जाने वाले पोषक तत्व (100 ग्राम हेतु)

पोषण घटक	मात्रा	मुख्य तत्व (विटामिन)	मात्रा	खनिज तत्व	मात्रा
ऊर्जा	304 कि. कैलोरी	बी–2	0.038 मिलीग्राम	कैल्शियम	6 मिलीग्राम
कार्बोहाइड्रेट्स (शर्करा)	82.4 ग्राम	बी–3	0.121 मिलीग्राम	लोहा	0.42 मिलीग्राम
पाचन तंतु	0.2 ग्राम	बी–5	0.068 मिलीग्राम	मैग्नीशियम	2 मिलीग्राम
वसा	0.0 ग्राम	बी–6	0.024 मिलीग्राम	फॉस्फोरस	4 मिलीग्राम
प्रोटीन	0.3 ग्राम	फोलेट (बी–9)	2 माइक्रोग्राम	पोटैशियम	52 मिलीग्राम
पानी	17.10 ग्राम	विटामिन–सी	0.5 मिलीग्राम	सोडियम	4 मिलीग्राम
				जिंक (जस्त)	0.22 मिलीग्राम

शहद एक जैविक रूप से सक्रिय प्राकृतिक पदार्थ है, जो ऊर्जा, प्राकृतिक शर्करा, विटामिन्स और खनिजों का समृद्ध स्रोत होने के कारण मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी माना जाता है। इसमें उपस्थित सरल शर्कराएँ, जैसे कि ग्लूकोज़ और फ्रक्टोज़, शीघ्र ऊर्जा प्रदान करती हैं, जो शारीरिक थकान को कम करने में सहायक होती हैं। शहद में पाए जाने वाले विटामिन बी समूह के घटक जैसे बी-२, बी-३, बी-५ और बी-६, शरीर की चयापचय क्रियाओं को सुचारु रखने में योगदान करते हैं। इसके अलावा, इसमें अल्प मात्रा में फोलेट और विटामिन-सी भी होते हैं, जो प्रतिरक्षा प्रणाली को सुदृढ़ करने और कोशिकीय क्षति से बचाव में सहायक होते हैं।

शहद में लोहा, कैल्शियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस और जिंक जैसे खनिज तत्व भी विद्यमान होते हैं, जो हड्डियों, मांसपेशियों, रक्त निर्माण तथा तंत्रिका तंत्र के क्रियाकलापों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके साथ ही, शहद में प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट्स और एंजाइम्स भी होते हैं, जो इसे न केवल पोषणवर्धक बल्कि औषधीय दृष्टि से भी उपयोगी बनाते हैं। अतः शहद एक संपूर्ण प्राकृतिक आहार के रूप में न केवल ऊर्जा का स्रोत है, बल्कि इसके नियमित सेवन से समग्र स्वास्थ्य को भी बल मिलता है। इस प्रकार शहद का सेवन शरीर को सम्पूर्ण पोषण प्रदान करने में सहायक होता है। बाजार में शुद्ध और प्रमाणित रूप से तैयार किया गया शहद अपनी पोषक गुणवत्ता के कारण तेजी से लोकप्रिय होता जा रहा है।

शहद के प्रमुख प्रकार:

मधुमक्खियों द्वारा विभिन्न प्रकार के फूलों के रस से तैयार किया गया शहद, उनके वनस्पति स्रोत के आधार पर विभिन्न प्रकारों में उपलब्ध होता है। यही विविधता शहद को केवल एक मीठा पदार्थ नहीं, बल्कि एक जैविक रूप से सक्रिय और औषधीय दृष्टि से उपयोगी उत्पाद बनाती है। भारत जैसे जैव-विविधता वाले देश में, विभिन्न जलवायु क्षेत्रों और वनस्पतियों के कारण शहद की कई किस्में पाई जाती हैं, जिनमें प्रत्येक की अपनी विशिष्टता होती है। इन किस्मों का उपयोग उनके स्वाद, रंग, सुगंध और गुणों के अनुसार पेय पदार्थों, सौंदर्य प्रसाधनों, प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों और घरेलू उपचारों में किया जाता है। कुछ प्रकार जैसे नीम, जामुन या अजवाइन शहद विशेषतः औषधीय महत्व रखते हैं, जबकि बहु-फूल (मल्टीफ्लोरल) शहद सामान्य पोषण के लिए उपयुक्त माना जाता है। शहद के विभिन्न प्रकार न केवल पोषण का स्रोत हैं, बल्कि उनमें रोग-प्रतिरोधक, सूजनरोधी, जीवाणुरोधी तथा एंटीऑक्सीडेंट जैसे जैवसक्रिय गुण भी विद्यमान होते हैं, जो इसे मानव स्वास्थ्य के लिए विशेष रूप से उपयोगी बनाते हैं।

कोष्ठक-2: भारत में शहद के प्रमुख प्रकार, उनके स्रोत और उपयोग

शहद का प्रकार	स्रोत पौधा / फूल	रंग	स्वाद / गंध	प्रमुख उपयोग
लीची शहद	लीची के फूल	हल्का सुनहरा	मीठा और सुगंधित	ऊर्जा, त्वचा की देखभाल, टॉनिक
नीम शहद	नीम के फूल	गहरा भूरा	हल्की कड़वाहट	औषधीय उपयोग, शुगर नियंत्रण
सरसों शहद	सरसों के फूल	पीला	तीखा-मीठा	प्रतिरक्षा शक्ति बढ़ाना
यूकलिप्टस शहद	यूकलिप्टस के फूल	हल्का भूरा	विशिष्ट तीव्र गंध	श्वसन रोगों में लाभदायक
सूरजमुखी शहद	सूरजमुखी के फूल	सुनहरा	हल्का और स्वादिष्ट	ऊर्जा स्रोत, बच्चों के लिए उपयुक्त
बहुपुष्पीय शहद	विभिन्न जंगली और खेतीय फूल	मध्यम रंग	मिश्रित, हल्का	सामान्य आहार, घरेलू उपयोग
जामुन शहद	जामुन के फूल	गहरा भूरा	थोड़ा कसैला	मधुमेह रोगियों के लिए उपयुक्त
गुलाब शहद	गुलाब के फूल	हल्का गुलाबी	मीठा और सुगंधित	सौंदर्य प्रसाधनों में उपयोग
अजवाइन शहद	अजवाइन के फूल	गाढ़ा भूरा	तीव्र, औषधीय गंध	पाचन में सहायक, पेट की बीमारियों में उपयोग
अकालफूल शहद	जंगलों में पाए जाने वाले फूल	हल्का भूरा	हल्का, सौम्य	ग्रामीण क्षेत्रों में आमत: उपयोग

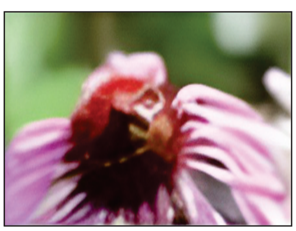

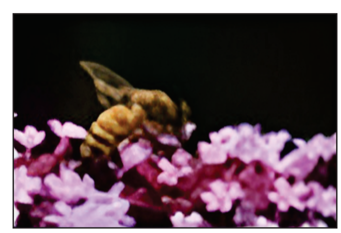

Sunflower

Ajwain

Eucalyptus

Forest

Kashmiri Acacia

Litchi

Multi-flora

Neem

Rosewood

मधुमक्खी पालन का खेती उत्पादन और आय बढ़ाने में योगदान:

मधुमक्खी पालन केवल शहद उत्पादन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह खेती की उत्पादकता और किसान की आय बढ़ाने का एक सशक्त माध्यम भी है। मधुमक्खियाँ फूलों से मधुरस एकत्र करते समय एक फूल से दूसरे फूल पर परागकण पहुंचाती हैं, जिससे प्राकृतिक परागण की प्रक्रिया संपन्न होती है। परागण के इस कार्य से फलों, सब्जियों और तिलहनों जैसी फसलों की गुणवत्ता और उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

जीवों द्वारा किए जाने वाले प्राकृतिक परागण में सबसे महत्वपूर्ण और प्रभावशाली योगदान मधुमक्खियों का होता है। :

हाल के वर्षों में रासायनिक कीटनाशकों के बढ़ते उपयोग के कारण अन्य परागणकर्ता जीवों की संख्या में भारी गिरावट आई है, जिससे मधुमक्खियों का महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। मधुमक्खी पालन के लिए किसी अतिरिक्त जमीन की आवश्यकता नहीं होती, और यह पारंपरिक कृषि के साथ आसानी से जोड़ा जा सकता है। इससे किसानों को अतिरिक्त आय का स्रोत प्राप्त होता है। साथ ही, शहद में पाए जाने वाले एंटी-बैक्टीरियल, एंटी-फंगल और औषधीय गुणों के कारण न केवल इसकी खपत बढ़ी है, बल्कि मूल्यवर्धित उत्पादों की मांग भी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में निरंतर बढ़ रही है।

कोष्ठक-3: विभिन्न फसलों के उत्पादन में मधुमक्खी पालन का योगदान

फसल का नाम	उत्पादन वृद्धि में योगदान (प्रतिशत में)
जामफल	70 से 140 प्रतिशत
सरसों	16 से 40 प्रतिशत
पपीता	22 से 88 प्रतिशत
सूर्यमुखी	32 से 45 प्रतिशत
मूँगफली	36 से 100 प्रतिशत

फसल का नाम	उत्पादन वृद्धि में योगदान (प्रतिशत में)
कपास	05 से 24 प्रतिशत
तिल	35 से 61 प्रतिशत
उड़द	20 से 80 प्रतिशत
काकड़ी	20 से 400 प्रतिशत
तुरई	21 से 30 प्रतिशत

मधुमक्खी पालन के अन्य लाभ :

मधुमक्खी पालन न केवल शहद उत्पादन तक सीमित है, बल्कि इससे प्राप्त विभिन्न उप-उत्पाद जैसे मधुमोम, रॉयल जेली, प्रोपोलिस, मधुमक्खी विष और परागकण भी अत्यंत मूल्यवान हैं। इन उत्पादों का उपयोग सौंदर्य प्रसाधनों, औषधीय तैयारियों, पोषण अनुपूरक (सप्लिमेंट्स) और पारंपरिक चिकित्सा में बड़े पैमाने पर होता है। मधुमोम से मोमबत्तियाँ, लिप बाम, दवाइयों की कोटिंग और पॉलिश तैयार की जाती है, जबकि रॉयल जेली और प्रोपोलिस जैसे उत्पाद उच्च मूल्य पर स्वास्थ्य उद्योग में बेचे जाते हैं। मधुमक्खी विष (Bee Venom) का उपयोग गठिया और दर्द निवारण के लिए अपिथैरेपी में होता है, जिससे इसकी मांग अंतरराष्ट्रीय बाजार में भी बढ़ रही है। इन उप-उत्पादों की वैश्विक स्तर पर भारी मांग है और इनका निर्यात किसानों व उद्यमियों के लिए अतिरिक्त और स्थायी आय का एक सशक्त साधन बन सकता है। इस प्रकार मधुमक्खी पालन न केवल पोषण और कृषि के लिए लाभकारी है, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था और निर्यात को भी नई दिशा देने की क्षमता रखता है।

मधुमक्खी पालन को बढ़ावा देने के लिए केंद्र सरकार की हालिया पहल :

भारत सरकार ने हाल के वर्षों में मधुमक्खी पालन को प्रोत्साहित करने के लिए कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं, जिनमें प्रमुख है राष्ट्रीय मधुमक्खी पालन और शहद मिशन (NBHM), जिसे 2020-21 में आत्मनिर्भर भारत अभियान के अंतर्गत 500 करोड़ रुपये के बजट के साथ शुरू किया गया। इस मिशन के अंतर्गत प्रशिक्षण, आधारभूत ढांचे का विकास, गुणवत्ता नियंत्रण और विपणन सहायता जैसे पहलुओं को शामिल किया गया है। इसके अतिरिक्त, मिशन फॉर इंटीग्रेटेड डेवलपमेंट ऑफ हॉर्टिकल्चर (MIDH) के माध्यम से परागण आधारित मधुमक्खी पालन को बढ़ावा दिया जा रहा है। शहद की गुणवत्ता सुनिश्चित करने हेतु विभिन्न राज्यों में हनी टेस्टिंग लैब्स की स्थापना की गई है। किसानों को संगठित करने के लिए हनी एफपीओ (किसान उत्पादक संगठन) बनाए जा रहे हैं और APEDA के माध्यम से शहद के निर्यात को प्रोत्साहित किया जा रहा है। साथ ही, राष्ट्रीय मधुमक्खी बोर्ड (NBB) तकनीकी मार्गदर्शन, प्रशिक्षण और सहायता प्रदान कर रहा है। इन सभी पहलों का उद्देश्य मधुमक्खी पालन को वैज्ञानिक, लाभकारी और संगठित बनाकर किसानों की आय में वृद्धि और कृषि उत्पादकता को मजबूत करना है।

"यदि मधुमक्खियाँ पृथ्वी से लुप्त हो जाएँ, तो मनुष्य मात्र चार वर्षों तक ही जीवित रह सकेगा।"

-अल्बर्ट आइंस्टीन

11. माइक्रोग्रीन उत्पादन और व्यवसाय: स्वास्थ्य, पोषण और लाभ का अनोखा संगम

हेतल देत्रोजा, उर्विश पटेल, आराधना चिलवाल, किरण रेड्डी, कणसागरा हार्दी

आज की बदलती हुई कृषि व्यवस्था में जहाँ एक ओर किसान जलवायु परिवर्तन, बढ़ती लागत और घटते मुनाफे की चुनौतियों से जूझ रहा है, वहीं दूसरी ओर कुछ नई तकनीकों और नवाचारों ने किसानों और शहरी उद्यमियों को आय के नए अवसर प्रदान किए हैं। इन्हीं में से एक है - माइक्रोग्रीन उत्पादन, जो न केवल पोषण के लिहाज़ से महत्वपूर्ण है, बल्कि एक सशक्त लघु-स्तरीय व्यवसाय मॉडल के रूप में भी उभर रहा है। कम लागत, कम समय और सीमित स्थान में उत्पादन की तकनीकों का विकास आवश्यक हो गया है। "माइक्रोग्रीन" इसी श्रेणी की एक अत्यंत लोकप्रिय, पोषक और लाभकारी कृषि विधि है जो न केवल शहरी किसानों बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी स्वरोजगार और पोषण सुरक्षा का माध्यम बन रही है।

माइक्रोग्रीन क्या हैं ?

माइक्रोग्रीन ऐसे छोटे पौधे होते हैं जो बीज अंकुरित होने के 7 से 14 दिनों के भीतर काटे जाते हैं। ये पौधे अंकुर और पूर्ण विकसित पौधों के बीच की अवस्था में होते हैं। ये पौधे आमतौर पर 2 से 4 इंच लंबे होते हैं और इनमें दो कोटिलेडन पत्तियों के साथ-साथ प्रारंभिक सच्ची पत्तियाँ भी होती हैं। वैज्ञानिक अध्ययनों में यह पाया गया है कि माइक्रोग्रीन में पोषक तत्वों की मात्रा पूर्ण विकसित पौधों से 4 से 40 गुना अधिक हो सकती है। माइक्रोग्रीन्स में फाइबर, विटामिन्स (जैसे विटामिन A, C, K), फोलेट, कैल्शियम, लोहा, फाइटोकेमिकल्स और एंटीऑक्सीडेंट्स अधिक मात्रा में पाए जाते हैं, जिससे ये हृदय रोग, मधुमेह, कैंसर और मोटापे जैसी बीमारियों से लड़ने में सहायक होते हैं। यही कारण है कि माइक्रोग्रीन को आजकल **"पावरफूड"** या **"सुपरफूड"** भी कहा जाता है। इनका उपयोग सलाद, सूप, सैंडविच, गार्निशिंग और हेल्दी जूस में बड़े पैमाने पर किया जाता है।

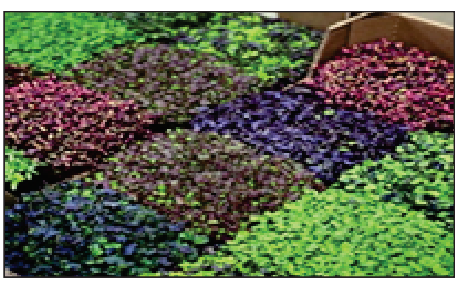

माइक्रोग्रीन उत्पादन की प्रक्रिया :

माइक्रोग्रीन उत्पादन के लिए किसी बड़ी ज़मीन या भारी मशीनरी की आवश्यकता नहीं होती। यह छत, बालकनी, आंगन या यहां तक कि रसोई के कोने में भी संभव है। उत्पादन के लिए एक ट्रे या टब में कोकोपीट, नारियल की भूसी, वर्मी कम्पोस्ट या कोई जैविक माध्यम डाला जाता है। बीजों को रात भर भिगोकर रखने से अंकुरण अच्छा होता है। इसके बाद बीजों को माध्यम में समान रूप से फैलाकर हल्के हाथ से दबाया जाता है और पानी छिड़काव किया जाता है।

आरंभिक 2-3 दिनों तक ट्रे को अंधेरे में रखा जाता है ताकि बीजों का अंकुरण तेज़ हो। इसके बाद ट्रे को अप्रत्यक्ष धूप या एलईडी लाइट के नीचे रखा जाता है। दिन में 1-2 बार स्प्रे बोतल से हल्के पानी का छिड़काव करना आवश्यक है, ताकि माध्यम नम बना रहे। सामान्यतः 7 से 12 दिनों में माइक्रोग्रीन कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं। इन्हें कैंची की मदद से जड़ के थोड़ा ऊपर से काटा जाता है। ध्यान देना जरूरी है कि बहुत अधिक नमी से फफूंदी लग सकती है, इसलिए संतुलित पानी देना चाहिए।

रोग और कीट प्रबंधन :

चूँकि माइक्रोग्रीन जैविक और ताजे उत्पाद होते हैं, इसलिए इनमें रसायनों का प्रयोग नहीं किया जाता। अत्यधिक नमी, गंदा पानी और अस्वच्छ वातावरण से डैम्पिंग-ऑफ, मोल्ड, और कीट संक्रमण की संभावना रहती है। स्वच्छता बनाए रखना और समय-समय पर नीम का पानी या जैविक फफूंदीरोधी छिड़काव लाभकारी होता है।

माइक्रोग्रीन की प्रमुख किस्में :

अधिकतर तिलहन, दलहन और मसाले वाली फसलें माइक्रोग्रीन के रूप में उगाई जाती हैं। इनमें प्रमुख हैं – मूली, मेथी, सरसों, चना, धनिया, ब्रोकली, पालक, सूरजमुखी, बेसिल (तुलसी), अजवाइन, गेंदा आदि। इनमें मूली और सरसों जैसी फसलें सबसे तेज़ बढ़ती हैं। इन फसलों की विशेषता यह है कि इनकी पत्तियाँ न केवल स्वादिष्ट होती हैं बल्कि इनका रंग, बनावट और सुगंध भी अलग होती है, जो इन्हें गॉरमेट किचन और रेस्टोरेंट इंडस्ट्री में लोकप्रिय बनाती है।

बाजार और व्यवसायिक संभावनाएं :

माइक्रोग्रीन एक उच्च-मूल्य फसल है, जिसकी मांग मुख्यतः शहरी क्षेत्रों में तेजी से बढ़ रही है। होटल, रेस्तरां, कैफे, फिटनेस केंद्र और हेल्थ कॉन्शियस उपभोक्ता इसका बड़ा बाजार हैं। इसके अतिरिक्त, सुपरमार्केट, जैविक उत्पाद बेचने वाले स्टोर, किसान बाजार, और ऑनलाइन माध्यम जैसे इंस्टाग्राम, व्हाट्सएप बिजनेस, फेसबुक आदि पर भी इसकी बिक्री की जा सकती है। इसमें श्रम कम लगता है और स्थान की आवश्यकता भी नगण्य होती है, इसलिए यह व्यवसाय महिलाओं, बेरोजगार युवाओं और वृद्ध लोगों के लिए भी बेहद अनुकूल है।

प्रशिक्षण एवं सरकारी सहयोग :

देश के कई कृषि विज्ञान केंद्र (KVKs), कृषि विश्वविद्यालय, आत्मा (ATMA) परियोजना, स्टार्टअप इंडिया मिशन और NABARD जैसी संस्थाएं माइक्रोग्रीन उत्पादन पर प्रशिक्षण, मार्गदर्शन और वित्तीय सहयोग प्रदान कर रही हैं। प्रशिक्षण लेने से रोग नियंत्रण, मार्केटिंग और गुणवत्ता नियंत्रण जैसी तकनीकों की समझ विकसित होती है, जिससे व्यवसाय को और अधिक सफल बनाया जा सकता है।

निष्कर्ष :

माइक्रोग्रीन उत्पादन एक अभिनव, कम लागत वाला, पर्यावरण-संवेदनशील और लाभदायक व्यवसाय है। इसकी सरल उत्पादन तकनीक, कम समय में कटाई, और उच्च बाज़ार मूल्य इसे खास बनाता है। आने वाले वर्षों में माइक्रोग्रीन न केवल स्वास्थ्य के क्षेत्र में एक बड़ा योगदान देंगे, बल्कि किसानों और शहरी उद्यमियों के लिए एक **सशक्त आय का स्रोत** बन सकते हैं। न केवल शहरी उद्यमियों बल्कि छोटे किसानों और महिला स्वयं सहायता समूहों के लिए भी आदर्श विकल्प बनाता है। आज जब देश आत्मनिर्भर भारत की ओर बढ़ रहा है, ऐसे में माइक्रोग्रीन जैसी नवाचार-आधारित कृषि विधियाँ **पोषण सुरक्षा और आर्थिक सशक्तिकरण** का सशक्त साधन बन सकती हैं। ऐसे में यदि आप खेती से जुड़ना चाहते हैं लेकिन सीमित संसाधन हैं, तो माइक्रोग्रीन आपके लिए एक **सुनहरा अवसर** हो सकता है।

12. मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन: सतत कृषि उत्पादन की आधारशिला

आराधना चिलवाल, किरण रेड्डी, कणसागरा हार्दी, हेतल देत्रोजा, राजा राम चौधरी, सी एस प्रहराज
भाकृअनुप - भारतीय मूँगफली अनुसंधान संस्थान

भूमिका :

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ जनसंख्या का बड़ा हिस्सा खेती पर निर्भर है। किंतु विडंबना यह है कि जिस "मिट्टी" को उत्पादन का आधार माना जाता है, उसी की सेहत दिनोंदिन बिगड़ती जा रही है। आधुनिक कृषि पद्धतियों, रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग, और जैव विविधता की कमी के कारण मृदा की उर्वरता और गुणवत्ता दोनों में गिरावट आई है। ऐसे समय में "मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन" न केवल एक तकनीकी आवश्यकता है, बल्कि सतत कृषि का मूल स्तंभ बन चुका है।

मृदा स्वास्थ्य क्या है?

मृदा स्वास्थ्य को सामान्यतः मिट्टी की भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणवत्ता के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिससे वह लंबे समय तक कृषि उत्पादन को समर्थन दे सके। एक स्वस्थ मृदा वह होती है जिसमें पर्याप्त मात्रा में जैविक पदार्थ, सूक्ष्मजीव, पोषक तत्व और जलधारण क्षमता मौजूद हो।

मृदा स्वास्थ्य पर संकट क्यों?

पिछले कुछ दशकों में जिस प्रकार से परंपरागत खेती से हटकर अंधाधुंध रासायनिक खेती की ओर देश ने रुख किया है, उससे मृदा को गहरा नुकसान पहुंचा है। विशेष रूप से हरित क्रांति के पश्चात्:

- एक ही फसल बार-बार लेने से मृदा में पोषक तत्वों की कमी
- नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश (NPK) का असंतुलित प्रयोग
- जैविक खाद और हरी खाद का उपयोग नगण्य
- गहरी जुताई से मिट्टी की संरचना और जीव तंत्र प्रभावित
- केंचुए, फायदेमंद जीवाणु और जैविक घटक नष्ट

इन सभी ने मिलकर मृदा को "जड़" से कमजोर बना दिया है।

मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन के उपाय :

मिट्टी को पुनः जीवन देने के लिए आवश्यक है कि किसान वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाएं। नीचे कुछ प्रमुख उपाय दिए गए हैं:

- **जैविक खाद एवं हरी खाद का प्रयोग**

  गोबर की खाद, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद (सनई, ढैंचा) मिट्टी में जैविक तत्वों की मात्रा बढ़ाते हैं। हरी खाद मिट्टी की नमी बढ़ाती है और सूक्ष्मजीवों के लिए पोषण देती है।

- **फसल चक्र (Crop Rotation)**

  एक ही फसल को बार-बार लेने से मिट्टी एक ही प्रकार के पोषक तत्वों को खो देती है। फसल विविधता से पोषक तत्व संतुलन बना रहता है।

- **सूक्ष्मजीव आधारित उत्पाद**

  फॉस्फोरस सोल्युबिलाइजिंग बैक्टीरिया (PSB), राइजोबियम, VAM आदि जैविक उत्पाद पोषक तत्वों को घुलनशील बनाते हैं।

  जैविक रोग नियंत्रण एजेंट भी मृदा की जैव सुरक्षा बढ़ाते हैं।

- **न्यूनतम जुताई**

  अत्यधिक जुताई मिट्टी की संरचना को नुकसान पहुँचाती है।

  नियंत्रित जुताई से कार्बन का संरक्षण होता है और मृदा की जलधारण क्षमता बढ़ती है।

- **मल्चिंग और ढकवाँ फसलें (Cover Crops)**

  मिट्टी के ऊपर जैविक मल्च (पुआल, घास आदि) डालने से नमी बनी रहती है, कटाव रुकता है और सूक्ष्मजीव पनपते हैं।

  ढकवाँ फसलें खरपतवार को रोकती हैं और मृदा को मजबूत बनाती हैं।

सरकारी पहल और नीति सहयोग :

भारत सरकार द्वारा मृदा सुधार के लिए कई योजनाएं शुरू की गई हैं:

- **मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना (Soil Health Card):**

  प्रत्येक किसान को उसके खेत की मृदा जांच रिपोर्ट मिलती है, जिससे वह संतुलित उर्वरक प्रयोग कर सके।

- **परंपरागत कृषि विकास योजना (PKVY):**

  जैविक खेती और स्थानीय खादों के प्रयोग को बढ़ावा।

- **राष्ट्रीय मृदा स्वास्थ्य मिशन:**

  प्रयोगशालाओं की स्थापना और किसान प्रशिक्षण।

गुजरात जैसे राज्यों में कृषि विज्ञान केंद्र (KVK), SAUs और NGO द्वारा सामुदायिक जैविक खाद इकाइयाँ स्थापित

की जा रही हैं, जो ग्राम स्तर पर मृदा सुधार की दिशा में एक मॉडल बन सकती हैं।

मृदा और जलवायु परिवर्तन

एक स्वस्थ मृदा कार्बन सिंक का कार्य करती है। इससे वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर कम होता है। साथ ही, जलधारण क्षमता बढ़ने से सूखे या अधिक वर्षा जैसी स्थितियों में भी फसल बच सकती है। अतः मृदा सुधार न केवल फसल बल्कि जलवायु को भी लाभ देता है।

चुनौतियाँ और समाधान

चुनौतियाँ:

- किसान जागरूकता की कमी
- तत्काल लाभ की चाह में रासायनिक खादों का प्रयोग
- स्थानीय स्तर पर जैविक विकल्पों की उपलब्धता नहीं
- वैज्ञानिक मार्गदर्शन का अभाव

संभावित समाधान:

- ग्राम स्तर पर मृदा परीक्षण सुविधा
- FPOs के माध्यम से जैविक उत्पादों का उत्पादन और वितरण
- विश्वविद्यालयों द्वारा फील्ड डेमो और प्रशिक्षण
- नीति समर्थन के साथ प्रोत्साहन राशि और तकनीकी सहायता

निष्कर्ष :

मिट्टी की उपेक्षा करना, कृषि की नींव को कमजोर करना है। यदि किसान मृदा को जीवंत इकाई के रूप में देखें और वैज्ञानिक तरीकों को अपनाएं, तो उपज, लाभ और पर्यावरण - तीनों को संतुलित किया जा सकता है। मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन एक दीर्घकालिक निवेश है, जो भारत को सतत, सुरक्षित और आत्मनिर्भर कृषि प्रणाली की ओर अग्रसर करता है।

13. खेती की फसलों में विषाणु तथा फाइटोप्लाज्मा से होने वाले रोग एवं उनका नियंत्रण

ऊर्जा भीमाणी, श्रेया आचार्य, नटराज एम.वी., चिरागकुमार एम. भालिया
भाकृअनुप-भारतीय मूँगफली अनुसंधान संस्थान, जूनागढ

खेतीबाड़ी में विभिन्न प्रकार के रोगकारक (Pathogens) जैसे की कवक (फफूंद), जीवाणु, विषाणु (वायरस) और फाइटोप्लाज्मा के कारण अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। इन रोगों के प्रभाव से कृषिमें फसलों की उपज और गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप किसानों को आर्थिक रूप से काफी हानि होती है।

इन रोगकारकों में विशेष रूप से विषाणु जनित रोगों को अत्यंत खतरनाक माना जाता है, क्योंकि ये सूक्ष्मतम जीव होते हैं इन्हें देखने के लिए विशेष प्रकार के उच्च विभेदन वाले इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शक यंत्र (Electron Microscope) की आवश्यकता होती है और अब तक कोई भी रासायनिक दवा सीधे विषाणु को नष्ट करने में प्रभावी सिद्ध नहीं हुई है, इसलिए इन रोगों का नियंत्रण इनके वाहक कीटों के प्रबंधन पर आधारित होता है। खेतीबाड़ी में विषाणुओं से फैलने वाले रोगों के लक्षणों में मोज़ेक (पत्तियों पर चितकबरे धब्बे), पीलापन, विकृति, वृद्धि रुकना तथा फूल और फल बनने की प्रक्रिया में रुकावट जैसी स्थितियाँ आमतौर पर देखी जाती हैं। भारत में वायरस जनित रोगों के कारण फसलों की उत्पादकता में औसतन 30 से 50 प्रतिशत तक की गिरावट देखी जाती है, और कुछ क्षेत्रों में यह नुकसान 50 प्रतिशत से भी अधिक तक पहुंच जाता है, जिससे किसानों को भारी आर्थिक क्षति उठानी पड़ती है।

फाइटोप्लाज्मा एक विशिष्ट प्रकार का रोगजनक सूक्ष्मजीव है, जो संरचनात्मक एवं जैविक रूप से विषाणु और जीवाणु के मध्यवर्ती स्वरूप का होता है। हालांकि, इसे जीवाणु के एक विशेष समूह 'मोलिक्यूट्स (Mollicutes) से संबंधित माना जाता है, जिसमें कोशिका भित्ति (Cell Wall) का अभाव होता है। फाइटोप्लाज्मा केवल जीवित पौध ऊतकों में ही पनप सकते हैं। ~~जो कम~~ फाइटोप्लाज्मा कण कीट वाहकों, जैसे पर्णफुदका (Leafhoppers) के माध्यम से संक्रमित पौधों से स्वस्थ पौधों में स्थानांतरित होकर रोग का तीव्र प्रसार करते हैं। फाइटोप्लाज्मा जनित रोगों का प्रभाव बैंगन, तिल और गन्ना जैसी प्रमुख कृषि फसलों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इन रोगों के लक्षणों में शीर्ष वृद्धि का अवरोध, लघुपर्ण (गट्ठे पत्ते), पुष्पविहीनता (फायलोडी), पत्तियों का विकृत रूप, शाखाओं का अत्यधिक विकास (विचेज ब्रूम) तथा पौधे की संपूर्ण वृद्धि में कमी जेसे लक्षण प्रमुख रूप से देखे जाते है। ये लक्षण न केवल पौधे की जीवन शक्ति को प्रभावित करते हैं, बल्कि उपज और गुणवत्ता में भी भारी गिरावट लाते हैं। भारत

उदाहरण:

फसल	रोग	किस्में	प्रतिरोधी/सहनशील
1. विषाणु जनित रोग			
मूंग	पीला मोज़ेक	पूसा विशाल, गुजरात आणंद मूंग-5, 6 और 7	प्रतिरोधी
अरहर	वंध्यत्व रोग (स्टरलिटी मोज़ेक वायरस)	पंत U-1, GT-104, ICPL-8 और ICPL-87119	प्रतिरोधी
भिंडी	पीली नस वाले रोग (येलो वेन मोज़ेक वायरस)	अर्का अनामिका, परभाणी क्रांति, आणंद क्रांति और पुसा सावनी	प्रतिरोधी
टमाटर	कुकड़वा रोग (**चित्र 1)**	अभिनव, अर्क रक्षक, काशी चयन और अर्क विशेष	प्रतिरोधी
मिर्च	मोज़ेक वायरस	पुसा सदाबहार	प्रतिरोधी
चना	ठूंठिया रोग	BG 256 और JG 62	सहनशील
मूँगफली	कली गलन रोग (**चित्र 3)** (Peanut bud necrosis disease)	ICGV 86388	प्रतिरोधी
2. फाइटोप्लाज्मा जनित रोग			
बैंगन	लघुपर्ण	आणंद राज, अर्क सीरिष और पुसा पर्पल क्लस्टर	प्रतिरोधी
तिल	पुष्पविहीनता (**चित्र 2)**	RT-351	सहनशील

में इन रोगों का कृषि उत्पादन पर बढ़ता हुआ प्रभाव एक गंभीर चिंता का विषय बनता जा रहा है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ ये फसलें व्यावसायिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

कुछ कृषि फसलों में विषाणु एवं फाइटोप्लाज्मा जनित रोगों का प्रारंभिक संक्रमण बीज के माध्यम से तथा द्वितीयक संक्रमण कीटों द्वारा होता है। यदि पिछले मौसम में जिन खेतों में ये रोग पाए गए थे, वहीं की फसल से बीज लेकर अगली बार बोया जाए, तो रोग का प्रसार बीज के माध्यम से संभव होता है। जैसे–लोबिया और लौकी की फसल में पाया जाने वाला पंचरंगी रोग, उड़द में पत्तियों की विकृति (क्रींकल रोग) तथा चने का ठूंठिया रोग (स्टंट रोग) प्रमुख रूप से बीज जनित होते हैं। ऐसे रोगों से बचाव के लिए रोगमुक्त एवं स्वस्थ बीजों का चयन अत्यंत आवश्यक होता है।

विषाणु या फाइटोप्लाज्मा जनित रोगों के विरुद्ध पूरी तरह प्रतिरोधी किस्मों का विकास करना अत्यंत चुनौतीपूर्ण होता है, इसका प्रमुख कारण यह है कि जब रोग फैलाने वाले सूक्ष्मजीव किसी फसल में प्रवेश करते हैं, तो वे तुरंत ही पौधों की कोशिकाओं में सक्रिय हो जाते हैं और रोग उत्पन्न करते हैं। एक बार जब ये रोगजनक सक्रिय हो जाते हैं, तो उनका नियंत्रण करना अत्यंत कठिन हो जाता है। इसके बावजूद, कुछ फसलकी किस्मों में विषाणु एवं फाइटोप्लाज्मा के प्रति आंशिक अथवा पूर्ण प्रतिरोधक क्षमता पाई गई है। ऐसी किस्मों में रोग की तीव्रता और उसका प्रभाव अपेक्षाकृत कम देखने को मिलता है।

कई फसलों में विषाणुजन्य रोगों की शुरुआत प्रायः नर्सरी अवस्था से ही हो जाती है। इसलिए रोगमुक्त एवं स्वस्थ पौध प्राप्त करने के लिए नर्सरी स्तर पर ही कीटों का प्रभावी नियंत्रण अत्यंत आवश्यक होता है। मिर्च, भिंडी तथा टमाटर की नर्सरी में कीट नियंत्रण हेतु कार्बोफ्यूरान 3G दाणेदार कीटनाशक (33.3 किलो प्रति हैक्टर) का प्रयोग किया जा सकता है। इससे प्रारंभिक अवस्था में ही रोगों को रोका जा सकता है और स्वस्थ पौधे तैयार किए जा सकते हैं। विशेष रूप से, टमाटर में कुकड़वा रोग से बचाव के लिए 40 मेष की नायलॉन जाली का उपयोग नर्सरी पर ढंकने हेतु किया जाना अनुशंसित है, जिससे रोग वाहक सफेद मक्खी की प्रविष्टि रोकी जा सके।

कुछ कृषि फसलों में विषाणुजनित रोगों का प्रसार संपर्क (स्पर्श) के माध्यम से भी होता है। जैसे की; टमाटर, तंबाकू, लोबिया और बेलवाली सब्ज़ियों में पाया जाने वाला पंचरंगी रोग (मोज़ेक) तथा पपीता का चट्ठा-पट्ठा रोग (स्पॉटेड रिंग स्पॉट) स्पर्श द्वारा तेजी से फैलते हैं। बीड़ी तंबाकू में पंचरंगी रोग अत्यंत संक्रामक होता है। उसमे रोगग्रस्त पौधों की पत्तियाँ निकालने के बाद यदि उन्हीं हाथों से स्वस्थ पौधों को छुआ जाए, तो रोग का तीव्र प्रसार होता है। इसके अतिरिक्त, कृषि उपकरणों, पक्षियों, कीटों तथा अन्य जीवों के माध्यम से भी यह रोग फैल सकता है।

टमाटर का कुकड़वा रोग

तिल का पुष्पविहीनता रोग

मूँगफली का कली गलन रोग

खेती योग्य फसलों में विषाणु एवं फाइटोप्लाज्मा जनित लगभग 80% रोगों का प्रसार विभिन्न चूसक कीटों के माध्यम से होता है। जिसमे सफेद मक्खी प्रमुख वाहक कीट है, जो मिर्च, टमाटर, तंबाकू और पपीता में कुकड़वा रोग, भिंडी में पीली नसों वाला रोग तथा मूंग, मोठ और उड़द में पीलिया (पंचरंगीय) रोग का प्रसार करती है। इन रोगों की रोकथाम के लिए सफेद मक्खी सहित चूसक कीटों का समय पर और प्रभावी नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है। टमाटर में स्पॉटेड वील्ट वायरस रोग का प्रसार थ्रिप्स द्वारा तथा नींबू में ग्रीनिंग वायरस रोग का प्रसार साइला कीटक द्वारा होता है। बैंगन में लघुपर्ण (गट्ठे पत्ते), गन्ने में ग्रैसी शूट (घास जैसे जड़) और तिल में पुष्पविहीनता जैसे रोग फाइटोप्लाज्मा के कारण होते हैं। ये रोगों का प्रसार मुख्य रूप से विभिन्न प्रकार के पर्णफुदका कीटों द्वारा होता- है। वहीं, अरहर में वंध्यत्व रोग एरियोफाइड कुल के कण कीट (Mite) द्वारा फैलता है, जो पत्तियों की सतह पर पाया जाता है। इन सभी रोगों में चूसक प्रकार के कीट वाहक (वेक्टर) की भूमिका निभाते हैं।

वायरस एवं फाइटोप्लाज़्मा रोगों का प्रबंधन :

- गर्मी के मौसम में खेत की गहरी जुताई करें। इससे मिट्टी में छिपे संक्रमित पौधों के अवशेष और कीटक नष्ट हो जाते हैं।
- खेत की मेढ़ पर मक्का, ज्वार या बाजरा जैसी ऊँची फसलें लगाएं। ये फसलें रोग फैलाने वाले कीटों को मुख्य फसल में प्रवेश करने से रोकती हैं।
- पिछली फसल के बचे हुए पौधे रोग के वाहक हो सकते हैं। इन्हें खेत से पूरी तरह हटाएं और नष्ट करें। इससे रोग का प्राथमिक स्रोत समाप्त होता है।
- खेत में यदि रोगग्रस्त पौधे दिखाई दें, तो उन्हें शीघ्र ही उखाड़कर सुरक्षित तरीके से नष्ट करना चाहिए, यांत्रिक प्रसार को रोकने के लिए खेत में कार्य करते समय हाथों और कृषि उपकरणों की नियमित सफाई अत्यंत आवश्यक है, जिससे रोग का प्रसार प्रभावी रूप से रोका जा सके।
- प्रमाणित और रोगमुक्त बीज का ही प्रयोग करें। मूंग, मोठ और उड़द की फसलों में कोकड़वा रोग की रोकथाम के लिए बीजों को बोने से पूर्व गरम पानी से उपचारित किया जाता है, जिससे बीजजनित रोगों की संभावनाएं कम हो जाती हैं। इमिडाक्लोप्रिड 17.8SL और थायोमेथोक्साम 70WS जैसे कीटनाशकों का बीज उपचार के रूप में उपयोग करने से फसलों की प्रारंभिक अवस्था में चूसक कीटों से होने वाले नुकसान को प्रभावी ढंग से कम किया जा सकता है।
- रोगों से फसल की सुरक्षा एवं उत्पादन में वृद्धि हेतु, जहां भी संभव हो प्रतिरोधी किस्मों का चयन अवश्य करना चाहिए।
- कीटनाशकों व कणनाशकों का समय पर उपयोग कर इन वाहक कीटों की संख्या को नियंत्रित किया जा सकता है, जिससे रोगों के फैलाव को रोका जा सकता है। खड़ी फसल में चूसक कीटों के नियंत्रण हेतु एसिटामिप्रिड 20SP, इमिडाक्लोप्रिड 17.8SL, एसिफेट 95SG, डायमेथोएट 30EC, थायोमेथोक्साम 70WS एवं क्लोथियानिडिन 0.5GR जैसे शोषक प्रकार के कीटनाशकों का छिड़काव प्रभावी होता है। कण कीट के नियंत्रण के लिए फेनाज़ाक्विन 10EC, प्रोपरगाइट 57EC, इटोक्साजोल 10SC, फेन्पायरोक्सीमेट 5EC तथा क्लोर्फेनेपायर 10SC जैसे कणनाशकों का प्रयोग कारगर सिद्ध होता है।

अतः खेती की फसलों में विषाणु एवं फाइटोप्लाज्मा जनित रोगों की समय पर पहचान, वाहक कीटों का प्रभावी नियंत्रण, प्रतिरोधी किस्मों का चयन एवं रोगग्रस्त पौधों की समय पर नष्टि जैसे समन्वित प्रबंधन उपायों को अपनाकर इन रोगों से होने वाले नुकसान को काफी हद तक रोका जा सकता है, जिससे फसल की गुणवत्ता एवं उत्पादन में वृद्धि सुनिश्चित की जा सकती है।

14. प्रकृति का मिनिएचर – बोनसाई की कला और विज्ञान

आर्मी. आर. पटोलिया, उपासना भोपाला, जयश्री लखनोत्रा

भाकृअनुप-भारतीय मूँगफली अनुसंधान संस्थान, जूनागढ़

बोनसाई एक विशेष बागवानी कला है, जिसमें बड़े वृक्षों को छोटे आकार में गमलों में उगाया जाता है। यह सिर्फ एक पौधा नहीं, बल्कि प्रकृति और धैर्य का सुंदर संगम है। “बोनसाई” शब्द जापानी भाषा से आया है, जहाँ “Bon” का अर्थ है - ट्रे (थाली) और “Sai” का अर्थ है - पौधा। यह कला चीन में प्रारंभ हुई, लेकिन जापान में इसका विकास हुआ। यह एक विशेष तकनीक है, जिसमें पेड़ को काट-छाँट, जड़ों की सीमित वृद्धि और छोटे गमले में नियंत्रित करके छोटा रखा जाता है, लेकिन उसकी पूरी बनावट एक प्राकृतिक पेड़ जैसी होती है।

- **बोनसाई के लिए लोकप्रिय पौधे**

  पीपल (Pipal), नीम (Neem), आम (Mango), बरगद (Banyan tree), फाइकस (Ficus), बोगनविलिया (Bougainvillea), अडेनियम (Adenium) आदि।

- **मुख्य प्रकार**

Formal Upright “Chokkan”

Informal Upright “Moyogi”

Slanting “Shakkan”

Twin Trunk “Sokan”

Multiple Trunk
"Kabudachi"

Forest
"Yose-ue"

Raft
"Lkadabukr"

Broom
"Hokidachi"

Semi-Cascade
"Han-kengar"

Cascade
"Kengar"

Literati or Bunjin
"Bunjingi"

Windswept
"Fukinagashr"

Root-over-Rock
"Seki-joiu"

Bonsai-in-Rock
"Ishisukr"

Shari
"Sharimikr"

- **बोनसाई तैयार करने की विधि:**

1. बोनसाई के लिए ऐसे पौधों का चुनाव करें:

- छोटी पत्तियाँ (Small Leaves): ताकि बोनसाई स्वरूप में संतुलित और स्वाभाविक दिखे।
- धीमी और नियंत्रित वृद्धि (Slow & Balanced Growth): जिससे बार-बार काटने की आवश्यकता न हो और आकार स्थिर बना रहे।
- छँटाई सहन करने की क्षमता (Tolerance to Pruning): पौधा शाखाओं की कटाई के बाद भी तेजी से नई कोंपलें निकाले।
- आकर्षक तना और जड़ प्रणाली (Aesthetic Trunk & Root System)

2. गमला कैसा होना चाहिए?

- उथला गमला (Shallow Pot): बोनसाई की जड़ों को सीमित रखने के लिए गमला गहरा नहीं होना चाहिए। इससे पौधे की वृद्धि नियंत्रित रहती है और वह बोनसाई रूप में बना रहता है।
- अच्छा जल निकास (Proper Drainage): गमले के तले में कम से कम एक छिद्र अवश्य होना चाहिए, ताकि अतिरिक्त पानी बाहर निकल सके। जलभराव से जड़ सड़ने की संभावना रहती है।

- आकार और रूप (Shape & Form): बोनसाई के प्रकार के अनुसार गमले का गोल, अंडाकार, आयताकार या अर्धचंद्राकार होना उपयुक्त होता है। जैसे, कैस्केड बोनसाई के लिए गहरा गमला और साधारण वृक्ष शैली के लिए उथला गमला बेहतर रहता है। बोनसाई वृक्ष की ऊँचाई और जड़ फैलाव को देखकर गमले की लंबाई और चौड़ाई तय करें। गमला पौधे की ऊँचाई का लगभग 2/3 भाग हो तो संतुलन बना रहता है।
- मिट्टी (टेराकोटा) या सिरेमिक के पारंपरिक गमले सबसे उपयुक्त होते हैं क्योंकि वे पौधे को सांस लेने की सुविधा देते हैं।

3. मिट्टी का चयन और मिश्रण :

- मिट्टी ढीली व दानेदार (well-drained) होनी चाहिए।
- जैविक खाद (जैसे गोबर खाद या वर्मीकम्पोस्ट) थोड़ा-थोड़ा करके मिलाएं।
- हर 1-2 साल में मिट्टी बदलें, ताकि जड़ों को ताजगी मिले।
- ज्यादा गीली मिट्टी से जड़ सड़न (Root Rot) हो सकती है।

4. जड़ों और शाखाओं की छँटाई (Pruning) :

- जब पौधा बढ़ने लगे तो उसकी ऊपरी शाखाओं और जड़ों को सावधानी से काटा जाता है, ताकि उसका आकार नियंत्रित रहे।
- पहली छँटाई आमतौर पर गर्मियों की शुरुआत या सर्दियों के अंत में की जाती है।
- शाखाओं को काटते समय इस बात का ध्यान रखें कि मुख्य तना प्रभावित न हो।
- प्रूनिंग शियर, रूट कटर जैसे उपकरणों का प्रयोग करें।

5. तार बाँधना (Wiring) :

- सही समय का चयन करें: पत्तियों के झड़ने के बाद (पतझड़ में) या नई वृद्धि शुरू होने से पहले (वसंत में) तार बाँधना सर्वोत्तम रहता है। अत्यधिक गर्मी या वर्षा के समय तार बाँधना नहीं चाहिए।
- सही तार का चयन: दो प्रकार के तार सामान्यत: उपयोग किए जाते हैं: (i) एल्युमिनियम वायर (Aluminium wire): मुलायम और आसानी से मोड़ने योग्य; खासकर पतियों वाले पौधों के लिए। (ii) कॉपर वायर (Annealed copper wire): कठोर और मजबूत; आमतौर पर शंकुधारी (coniferous) पौधों के लिए।
- तार की मोटाई का चुनाव: जिस शाखा को मोड़ना है, उसकी मोटाई का लगभग 1/3 भाग मोटाई का तार लें। बहुत पतला या बहुत मोटा तार शाखा को नुकसान पहुँचा सकता है।
- तार बाँधने की प्रक्रिया: पौधे के तने या शाखा के आधार से शुरू करें और तार को 45 डिग्री कोण पर सर्पाकार घुमाते हुए ऊपर की ओर ले जाएँ। सुनिश्चित करें कि तार न ज़्यादा ढीला हो और न ज़्यादा कसावदार, जिससे पौधे को चोट न पहुँचे। अब शाखा को धीरे से मोड़कर इच्छित आकार दें।
- अवधि और निगरानी: सामान्यतः 2 से 6 महीने में शाखा अपना नया आकार पकड़ लेती है। तार को समय-समय पर चेक करें, कहीं वह शाखा में धँस तो नहीं रहा है। जैसे ही शाखा स्थिर हो जाए, तार को काटकर हटा दें, खींचकर न हटाएँ।

6. गमला बदलना (Repotting) :

- हर 3 से 6 वर्ष में बोनसाई पौधे को एक नए गमले में ट्रांसप्लांट करना आवश्यक होता है।
- यह प्रक्रिया इसलिए की जाती है, ताकि जड़ों की छँटाई (Root pruning) की जा सके, मिट्टी को ताज़ा किया जा सके और पौधे की स्वस्थ वृद्धि बनी रहे।
- यह कार्य आमतौर पर वसंत ऋतु में किया जाता है, जब पौधा सक्रिय वृद्धि की अवस्था में होता है। उस समय पौधा आसानी से नई परिस्थितियों में समायोजित हो जाता है।

निष्कर्ष:

बोनसाई केवल बागवानी की एक तकनीक नहीं, बल्कि यह प्रकृति और कला का जीवंत संगम है। यह हमें धैर्य, अनुशासन और निरंतर देखभाल का मूल्य सिखाता है। छोटे से आकार में एक विशाल वृक्ष का सौंदर्य समेट लेना, मानव रचनात्मकता और प्रकृति के प्रति श्रद्धा का प्रतीक है।

बोनसाई न सिर्फ घर की शोभा बढ़ाता है, बल्कि मानसिक शांति और संतुलन का अनुभव भी कराता है। यदि सही जानकारी, समय और समर्पण के साथ किया जाए, तो यह कला जीवन का अभिन्न हिस्सा बन सकती है। इस प्रकार, बोनसाई न केवल एक पौधा है, बल्कि यह जीवन जीने की एक सुंदर कला भी है।

15. भारत में मूँगफली की खेती का बदलता स्वरूप

आर्मी. आर. पटोलिया, उपासना भोपाला, जयश्री लाखणोत्रा, मंजूनाथ पालेड, नटराज एम. वी.

भाकृअनुप-भारतीय मूँगफली अनुसंधान संस्थान, जूनागढ़

भारत वैश्विक मूँगफली उत्पादन में दूसरे स्थान पर है। सोयाबीन, सरसों और सूरजमुखी के बाद मूँगफली दुनिया भर में चौथी सबसे महत्वपूर्ण तिलहन फसल है। भारत में मूँगफली की खेती का एक समृद्ध इतिहास रहा है। यह लंबे समय तक गुजरात, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु जैसे राज्यों में प्रमुख तेलहन फसल के रूप में उगाई जाती रही है। हालाँकि, हाल के वर्षों में अनावृष्टि, गुणवत्तापूर्ण बीज की अनुपलब्धता, उत्पादन मूल्य में वृद्धि आदि के कारणों से कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में मूँगफली के क्षेत्र और उत्पादन दोनों में गिरावट आई है। इसके विपरीत, गैर-पारंपरिक राज्यों राजस्थान, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में बदली हुई जलवायु परिस्थितियाँ तथा बेहतर बाज़ार के कारण मूँगफली का क्षेत्र तेजी से बढ़ रहा है। दक्षिण भारत में मूँगफली के क्षेत्रफल में लगातार गिरावट देखी जा रही है, ग्राफ में भी यही दर्शाया गया है (रेखाचित्र 01अ)| वहीं अब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश जैसे क्षेत्र इसकी नई वृद्धि की भूमि के रूप में उभर रहे हैं (रेखाचित्र 01ब)। यह बदलाव न केवल खेती के स्वरूप को बदल रहा है, बल्कि किसानों की आय, देश की खाद्य सुरक्षा और तेल आत्मनिर्भरता जैसे व्यापक क्षेत्रों को भी प्रभावित कर रहा है।

रेखाचित्र 01अ: दक्षिणी राज्यों में मूँगफली की खेती का घटता रकबा (2019-20 से 2023-24)

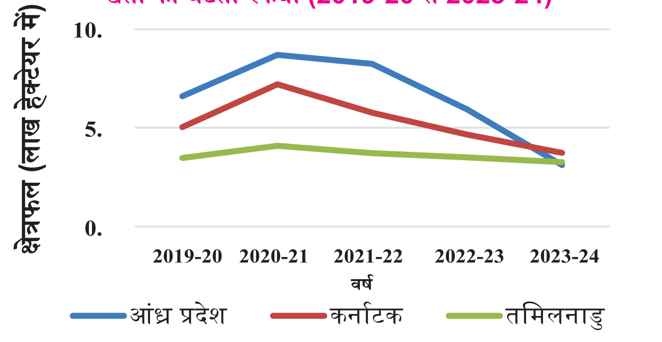

रेखाचित्र 01ब: उत्तर एवं पूर्व भारत में मूँगफली की खेती का बढ़ता रकबा (2019-20 से 2023-24)

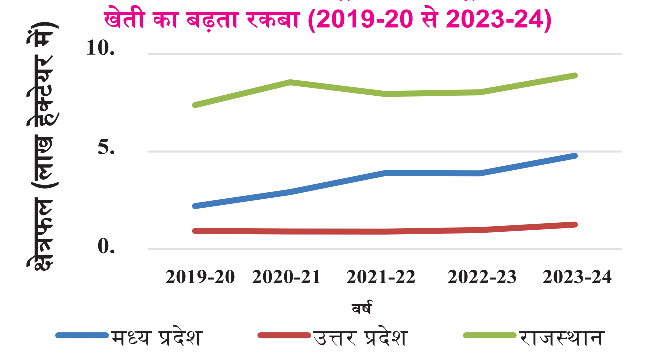

दक्षिण भारत में पारंपरिक मूँगफली क्षेत्र पर प्रतिस्पर्धी फसलों का कब्ज़ा :

दक्षिण भारत में मूँगफली की खेती से अन्य फसलों की ओर हो रहे फसल परिवर्तन के दो प्रमुख कारण हैं-प्रतिस्पर्धी फसलों से अधिक कुल लाभ की प्राप्ति तथा मूँगफली उत्पादन में अपेक्षाकृत अधिक श्रम की आवश्यकता। आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु जैसे राज्यों में किसान अब मूँगफली की जगह मक्का, कपास और सोयाबीन जेसी फसलों को प्राथमिकता दे रहे हैं क्योंकि इनसे उन्हें अधिक आर्थिक लाभ मिल रहा है। इसके अतिरिक्त, मूँगफली की खेती अत्यंत श्रम-प्रधान है। जबकि मक्का व सोयाबीन जैसी फसलों में श्रम लागत अपेक्षाकृत कम होती है और यंत्रीकरण भी अधिक संभव होता है। श्रमिकों की बढ़ती मजदूरी दर और घटती उपलब्धता ने मूँगफली की खेती को और भी अलाभकारी बना दिया है। इसके विपरीत अन्य फसलों में कम श्रम लागत, बेहतर बाज़ार मूल्य और यंत्र आधारित खेती संभव है, जिससे किसानों का झुकाव उनकी ओर बढ़ रहा है।

तालिका 01: दक्षिण भारत के राज्यों में मूँगफली एवं प्रतिस्पर्धी फसलों की कुल लाभ और श्रम उपयोग की तुलना

राज्य	फसल	कुल लाभ (₹/हेक्टेयर)	श्रम उपयोग (मानव-दिवस/हेक्टेयर/फसल)
कर्नाटक	मूँगफली	2,084	71
	सोयाबीन	11,956	39
	मक्का	2,724	53
आंध्र प्रदेश	मूँगफली	–28,843	49
	कपास	13,535	59
तमिलनाडु	मूँगफली	1,208	68
	मक्का	6,472	53

यह तालिका (**तालिका 01**) दक्षिण भारत के प्रमुख राज्यों-कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में मूँगफली और अन्य प्रतिस्पर्धी फसलों के बीच कुल लाभ और श्रम उपयोग के आधार पर तुलना प्रस्तुत करती है। आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि मूँगफली की तुलना में अन्य फसलें जैसे सोयाबीन, मक्का और कपास ना केवल अधिक लाभदायक हैं, बल्कि श्रम की दृष्टि से भी अधिक कुशल हैं। कर्नाटक में मूँगफली से प्रति हेक्टेयर मात्र ₹ 2.084 की कुल लाभ प्राप्त होता है, जबकि सोयाबीन ₹ 11.156 और मक्का ₹ 2.724 का लाभ देती हैं। मूँगफली की खेती में प्रति हेक्टेयर 71 मानव-दिवस की आवश्यकता होती है, जबकि सोयाबीन और मक्का की खेती में क्रमशः केवल 39 और 53 मानव-दिवस ही पर्याप्त होते हैं।

आंध्र प्रदेश की स्थिति अधिक चिंताजनक है, जहाँ मूँगफली से ₹ 28.843/हेक्टेयर का घाटा हो रहा है, जबकि कपास से ₹13.535 की सकारात्मक आमदनी प्रदान कर रहे हैं। हालांकि कपास की श्रम आवश्यकताएँ 59 मानव- दिवस हैं, फिर भी वे मूँगफली (49 मानव-दिवस) की तुलना में कहीं अधिक लाभदायक हैं। नकारात्मक शुद्ध लाभ के बावजूद किसान अभी भी मूँगफली की खेती जारी रखते हैं, क्योंकि इसकी चारा भेड़-बकरियों के लिए एक आवश्यक चारा है। तमिलनाडु में मूँगफली से प्राप्त कुल लाभ केवल ₹1.208/हेक्टेयर है, जबकि मक्का ₹6.472 का लाभ दे रहे हैं। श्रम निवेश की दृष्टि से मूँगफली (68 मानव-दिवस) फिर से प्रतिस्पर्धी फसल जैसे मक्का (53 मानव-दिवस) से पिछड़ती नजर आती है।

श्रम लागत और कुल लाभ के अंतर के अतिरिक्त भी कई अन्य कारण हैं, जो दक्षिण भारत में मूँगफली से अन्य फसलों की ओर फसल परिवर्तन को प्रभावित कर रहे हैं। यह बदलाव अचानक नहीं बल्कि वित्तीय, पर्यावरणीय और नीति संबंधी कारणों से प्रेरित है:

- **मौसम की अनिश्चितता:** बारिश की समय-सीमा अनिश्चित होती है। फसल के आरंभ में सुखा से बुवाई में देरी होती है; फसल के मध्य में नमी की कमी से खूटे का जमीन में प्रवेश और फली गठन में बाधा आती है, जिससे उपज कम हो जाती है; फसल के अंत में सुखा पड़ने से कटाई में देरी होती है, तथा कटाई के समय बारिश होने से कभी-कभी यथास्थान बीज अंकुरण हो जाता है।
- **गुणवत्तापूर्ण बीज की कमी:** सरकारी स्तर पर मिलने वाली मूँगफली की बीजों की गुणवत्ता और समय पर उपलब्धता एक गंभीर समस्या है, सब्सिडी वाले सीमित बीज अक्सर समय पर किसानों तक नहीं पहुँच पाते, जिससे बुवाई समय पर नहीं हो पाती है। कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में मूँगफली का बीज प्रतिस्थापन अनुपात क्रमशः 33,61.5 और 33% है।
- **मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट:** भू-क्षरण ने मिट्टी की उर्वरता को कमजोर कर दिया है। कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में मिट्टी ज्यादातर सीमांत है और इसकी उर्वरता कम है, तथा लगातार एकल फसल उगाने के कारण आवश्यक पोषक तत्वों की भारी कमी हो गई है।
- **रोग एवं कीट प्रबंधन की जटिलता:** मूँगफली में ग्रीवा विगलन, तना विगलन टिक्का रोग और मुंडा का प्रकोप आम है, जिसका नियंत्रण कठिन और महंगा होता है। इसके विपरीत, मक्का और सोयाबीन में रोग एवं कीट प्रबंधन अपेक्षाकृत सरल है।
- **प्रसंस्करण और मूल्यवर्धन की सीमित सुविधाएँ:** मूँगफली का स्थानीय स्तर पर मूल्यवर्धन एवं भंडार सीमित है, जिससे किसान कच्चे माल के रूप में ही बेचने को मजबूर होते हैं। मूँगफली एक उच्च आयतन वाली फसल होने के कारण इसका परिवहन कठिन और महंगा होता है।

दक्षिण भारत में मूँगफली की खेती में गिरावट एक जटिल बदलाव का परिणाम है-जिसमें कम लाभदायक मंडी भाव, मौसम की अनिश्चितता, आकर्षक विकल्पों की उपलब्धता, कमजोर बीज और सरकारी सहायता, एवं मिट्टी की गिरती उर्वरता मुख्य कारण हैं। इन सभी कारकों के चलते किसान अब कम जोखिम, अच्छी आमदनी और अन्य विकल्पों जैसे की कम मशीनीकृत फसल की ओर बढ़ रहे हैं।

भारत के अन्य राज्यों में मूँगफली क्षेत्र की स्थिति :

पारंपरिक उत्पादक राज्यों से इतर, अब भारत के कई नए हिस्सों में मूँगफली की खेती उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज कर रही है। यह परिवर्तन मौसम, सरकारी नीतियां और बाजार समर्थन जैसे कारणों से प्रेरित है। मूँगफली की बुवाई क्षेत्र में उल्लेखनीय वृद्धि|

राज्य	क्षेत्रफल (लाख हेक्टेयर में)		प्रतिशत वृद्धि
	2023-24	2024-25	(%)
गुजरात	16.95	19.55	15.33
राजस्थान	8.90	10.48	17.75
मध्य प्रदेश	4.79	7.19	50.10
उत्तर प्रदेश	1.26	3.70	193.65

2024-25 में मूँगफली की खेती ने न केवल गुजरात (15.33%) और राजस्थान (17.75%) में मजबूती से विस्तार किया, बल्कि मध्य प्रदेश (50.10%) और उत्तर प्रदेश (193.65%) जैसे गैर-पारंपरिक क्षेत्रों में भी चौंकाने वाली वृद्धि दर्ज की।

मूँगफली के क्षेत्रफल में वृद्धि के कई प्रमुख कारण हैं जैसे की कपास में बढ़ती समस्याओं, जैसे पिंक बॉलवर्म का प्रकोप और नकली बीजों की उपलब्धता के कारण गुजरात के किसानों ने मूँगफली को एक बेहतर विकल्प के रूप में अपनाया| बारिश की मात्रा में वृद्धि होने से भी मूँगफली की बुवाई को प्रोत्साहित किया है। राजस्थान और मध्य प्रदेश जैसे राज्यों का गुजरात से सीधा जुड़ाव है, जहाँ की सीड कंपनियाँ मूँगफली के बीजों में अधिक सक्रिय हैं, जिससे किसानों को गुणवत्तापूर्ण बीज आसानी से उपलब्ध हो रहे हैं और मूँगफली का बाज़ार मजबूत बना है। राजस्थान की रेतीली मिट्टी में बोल्ड बीज प्राप्त होते हैं, जो बाजार में अधिक पसंद किए जाते हैं। इसके अलावा, उच्च उत्पादकता देने वाली किस्मों का उपयोग, स्प्रिंकलर सिंचाई से जल का कुशल उपयोग और इंदिरा गांधी नहर परियोजना से बेहतर सिंचाई सुविधाओं ने मूँगफली की खेती में उल्लेखनीय वृद्धि की है।

मूँगफली के क्षेत्र में गिरावट को रोकने और/या मूँगफली के क्षेत्र को बढ़ाने के लिए उपाय :

- **स्थान-विशिष्ट किस्मों का विकास एवं वितरण:**

  उपयुक्त किस्में (जैसे सूखा सहनशील, कम अवधि वाली, रोग-प्रतिरोधी) विकसित की जाएँ। इन किस्मों का तेजी से विस्तार पब्लिक–प्राइवेट पार्टनरशिप (PPP) मॉडल के माध्यम से किया जाए ताकि गुणवत्तायुक्त बीज समय पर किसानों तक पहुँचे।

- **PPP मॉडल के तहत बीज उत्पादन और वितरण तंत्र का विस्तार:**

  अनुसंधान संस्थानों, निजी कंपनियों और एफपीओ को मिलाकर **बीज उत्पादन – प्रमाणीकरण – वितरण** की श्रृंखला विकसित की जाए, जिससे बीज की कमी न हो और क्षेत्रवार उपयुक्त बीज समय पर मिल सके।

- कम लागत वाले यंत्रीकरण और अर्ध स्वचालित यंत्रों (जैसे पॉड डिगर, मिनी थ्रेशर) के उपयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। साथ ही, किसानों को स्थानीय जलवायु और मिट्टी के अनुकूल उच्च उत्पादकता वाली मूँगफली किस्मों का चयन करना चाहिए।

- **अनुवृति एवं प्रोत्साहन:** बीज, यंत्र एवं जैविक उत्पादक सामग्री पर राज्य व केंद्र सरकार द्वारा लक्षित सब्सिडी प्रदान की जाए, विशेषकर छोटे व सीमांत किसानों को प्राथमिकता दी जाए।

  मूँगफली प्रसंस्करण इकाइयों को भी वित्तीय सहायता एवं विपणन समर्थन दिया जाए, जिससे मूल्य वर्धन बढ़े और किसानों की आमदनी स्थिर हो।

- सुखा सहनशील और कम अवधि में तैयार होने वाली मूँगफली की उन्नत किस्मों का उपयोग खेती की उत्पादकता बढ़ाने में अधिक प्रभावी सिद्ध होता है। विकसित उन्नत किस्मों के गुणवत्तापूर्ण बीजों की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित करना भी अत्यंत आवश्यक है।

- प्रशिक्षण कार्यक्रमों को समूहस्तर/किसान उत्पादक संगठन (FPOs/FPCs) पर आयोजित करना, व्यक्ति-विशेष की जगह सामूहिक सत्रों को प्राथमिकता देना चाहिए।

- किसान सहयोग समितियाँ (FPOs) के माध्यम से सामूहिक बैंकों/उधार योजनाओं का निर्माण और लागत (cost) कम की जा सकती है।

- किसानों को अकेले छोड़ने के बजाय, उन्हें FPOs/ इकाइयों (10.000 एकर+), कृषि विज्ञान केंद्र या NGOs के मंच पर लाएँ-इससे किसानो का आपसी तालमेल और संसोधन का सामूहीकरण बढ़ता है|

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch